75 वर्ष संविधान के

जनवरी 2025

आजकल

भारतीय संस्कृति, साहित्य एवं कला का मासिक

जन्मशताब्दी
कवि और गीतकार
गोपाल दास 'नीरज'
(4 जनवरी, 1925 - 19 जुलाई, 2018)

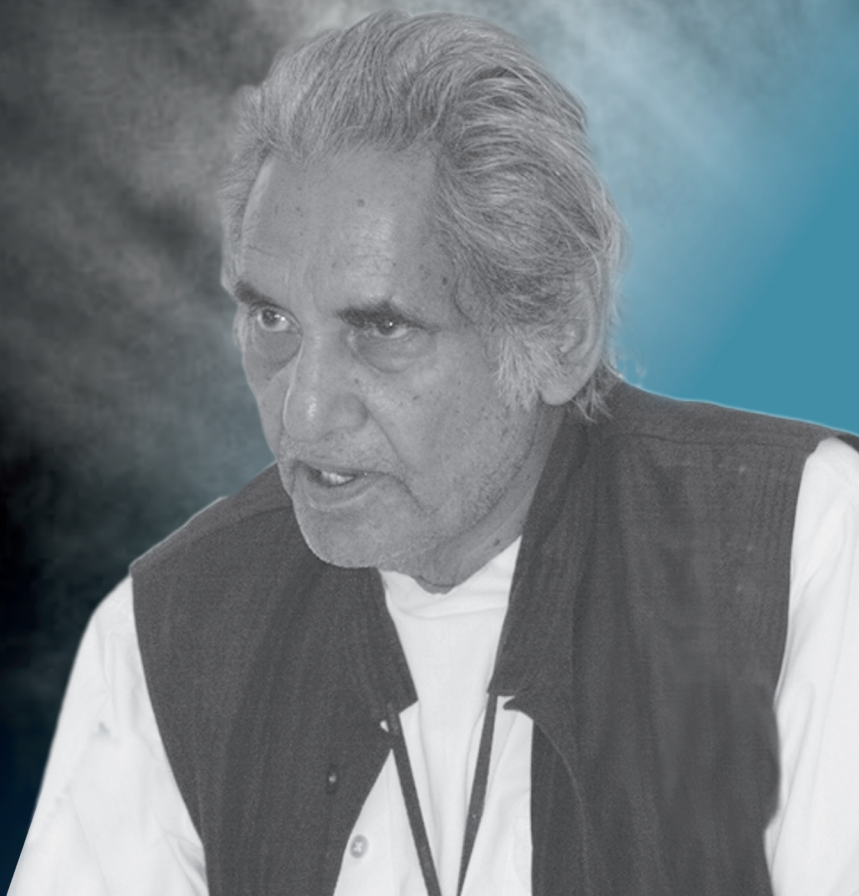

मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूँ

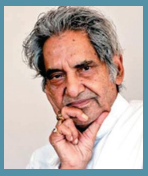

गोपाल दास 'नीरज'

मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूँ
तुम मत मेरी मन्ज़िल आसान करो।

हैं फूल रोकते, काँटें मुझे चलाते
मरुस्थल, पहाड़ चलने की चाह बढ़ाते

सच कहता हूँ जब मुश्किलें नहीं होती हैं
मेरे पग तब चलने में भी शर्माते

मेरे संग चलने लगें हवाएँ जिससे
तुम पथ के कण-कण को तूफ़ान करो।

मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूँ
तुम मत मेरी मन्ज़िल आसान करो।

अंगार अधर पे धर मैं मुस्काया हूँ
मैं मर्घट से ज़िन्दगी बुला के लाया हूँ

हूँ आँख-मिचौनी खेल चला क़िस्मत से
सौ बार मृत्यु के गले चूम आया हूँ

है नहीं स्वीकार दया अपनी भी
तुम मत मुझ पर कोई एहसान करो।

मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूँ
तुम मत मेरी मन्ज़िल आसान करो।

शर्म के जल से राह सदा सिंचती है
गति की मशाल आँधी में ही हँसती है

शोलों से ही शृंगार पथिक का होता है
मन्ज़िल की माँग लहू से ही सजती है

पग में गति आती है, छाले छिलने से
तुम पग-पग पर जलती चट्टान धरो।

मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूँ
तुम मत मेरी मन्ज़िल आसान करो।

फूलों से जग आसान नहीं होता है
रुकने से पग गतिवान नहीं होता है

अवरोध नहीं तो संभव नहीं प्रगति भी
है नाश जहाँ निर्मम वहीं होता है

मैं बसा सुकून नव-स्वर्ग 'धरा' पर जिससे
तुम मेरी हर बस्ती वीरान करो।

मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूँ
तुम मत मेरी मन्ज़िल आसान करो।

मैं पंथी तूफ़ानों में राह बनाता
मेरा दुनिया से केवल इतना नाता

वह मुझे रोकती है अवरोध बिछाकर
मैं ठोकर उसे लगाकर बढ़ता जाता

मैं ठुकरा सकूँ तुम्हें भी हँसकर जिससे
तुम मेरा मन-मानस पाषाण करो।

मैं तूफ़ानों में चलने का आदी हूँ
तुम मत मेरी मन्ज़िल आसान करो।

स्थापित 1945

आजकल

जनवरी, 2025
पौष-माघ 1946

अनुक्रम

❖ वर्ष : 80 ❖ अंक : 9 ❖ पृष्ठ : 108 ❖ पूर्णांक : 953

जन्मशताब्दी

8 ...कारवाँ गुज़र गया ग़ुबार देखते रहे : राजीव श्रीवास्तव

16 स्वीकार और अस्वीकार के बीच : योगेन्द्र दत्त शर्मा

23 तुम्हें लग जाएँगी सदियाँ हमें भुलाने में : सतीश नूतन

30 पुत्र के नज़रिए से : मिलन प्रभात गुंजन

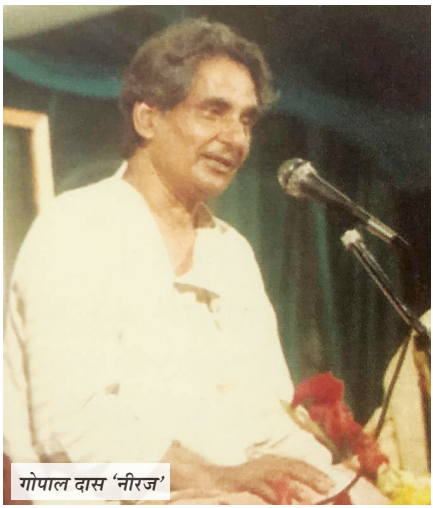

गोपाल दास 'नीरज'

यत्र तत्र अन्यत्र

34 नीरजजी को याद करते हुए... : कुलश्रेष्ठ कमल

स्मरण

36 जैनेन्द्र की नज़र में - प्रेम, विवाह और स्त्री : राजेन्द्र गौतम

46 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की उर्दू काव्य में चमक : असद रज़ा

50 विजय तेंडुलकर - विद्रोही नाटककार : मुकेश पोपली

आलेख

56 सुरेन्द्र राजन - गाँधी के चरित्र को जीवन्त करते कलाकार सुधा रानी तैलंग

कहानी

62 एकमुश्त : हंसा दीप

68 चेहरे : आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

कविताएँ/ग़ज़लें

55 तनहाई : धर्मेन्द्र गुप्त 'साहिल'

67 ग़ज़लें : प्रेमकुमार गौतम

75 क़लम : किरण सिंह

75 महका गुलाब रखेंगे : सिद्धेश्वर

वातायन

76 वनलता सेन (बाँग्ला कविताएँ) : जीवनानन्द दास अनुवाद : रविशंकर सिंह

स्पर्धा आजकल

78 केदारनाथ अग्रवाल - काव्य में प्रेम का सामाजिक स्वरूप : गोपाल यादव

विविध रंग

84 'टुसू' और उसके गीत : रंजना शर्मा

ललित निबन्ध

93 आदिम राग की खिचड़ी : यश मालवीय

पुस्तक आजकल

95 महात्मा गाँधी - चित्रमय जीवन गाथा : आभा गौड़

96 संस्मरणों की शृंखला : चमन लाल

98 चमत्कृत करता लेखन : सुमन बाजपेयी

100 प्रेम, अध्यात्म और युगबोध की... : रासबिहारी पाण्डेय

साहित्यिक गतिविधियाँ

102 कुंदन कुमार/अजय कुमार शर्मा/ के.के. बिरला फ़ाउंडेशन

हिन्दी साहित्य में छायावाद और प्रगतिवाद के बीच की खाई को पाटने का प्रयास करने वाले गीतकार और कवि गोपाल दास 'नीरज' ने मुख्य धारा के साहित्य में कविता, गीत और मुक्तक की विधाओं को अपने अनोखे अंदाज़ में प्रस्तुत किया और उन्हें जन-जन तक पहुँचाया। सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय समस्याओं को अपनी कविताओं और गीतों में पिरोते हुए, नीरजजी ने साहित्य और लोक जीवन के बीच एक सेतु का निर्माण किया। उन्होंने साहित्य को उस रूप में प्रस्तुत किया, जो गहरी विचारशीलता और काव्यात्मक ऊँचाई के साथ-साथ आम जनता के दिलों को छू लेने में सफल रहा। उनकी रचनाओं में आम जीवन की सरलता, समाज के संघर्ष, प्रेम और जीवन-मृत्यु के दर्शन को अभिव्यक्ति मिली। उन्होंने हिन्दी कविता को क्लिष्टता से मुक्त किया। उनकी रचनाओं में छायावाद और प्रगतिवाद के साथ नई कविता के तत्त्वों का अद्‌भुत संगम था। 'नीरज' का प्रारम्भिक प्रसिद्ध 'कारवाँ गुज़र गया...' गीत - *'स्वप्न झरे फूल से, मीत चुभे शूल से, लुट गए सिंगार सभी बाग़ के बबूल से'* केवल व्यक्तिगत पीड़ा नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक संघर्ष का प्रतीक भी बना। गोपाल दास 'नीरज' कविता को साहित्यिक ऊँचाई के साथ-साथ मंचीय लोकप्रियता प्रदान करने वाले अग्रणी साहित्यकारों में से थे। उनकी रचनाएँ केवल पठन के लिए नहीं थीं, अपितु वे गाने और सुनाए जाने के लिए भी थीं। नीरजजी की जन्मशती हिन्दी साहित्य और संगीत प्रेमियों के लिए उनके योगदान को याद करने और नई पीढ़ी को उनके कृतित्व से जोड़ने का अवसर है। 'आजकल' के इस अंक में अल्हड़ता लेकिन सादगी और सज्जनता से परिपूर्ण व्यक्तित्व और जीवन के संघर्ष और गहराई से किए गए अनुभवों से उपजे अपने कृतित्व से लोकप्रियता की ऊँचाइयों को स्पर्श करने वाले गोपाल दास 'नीरज' को विभिन्न आलेखों तथा रचनाओं के माध्यम से श्रद्धांजलि देने का एक लघु प्रयास किया गया है।

अपनी रचनाओं में पात्रों के मानसिक द्वंद्व और उनके भावनात्मक उतार-चढ़ाव को सटीकता से उकेरने वाले और नारी के जीवन और उसकी स्वतन्त्रता को अपने साहित्य में विशेष स्थान देने वाले एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यास के प्रणेता जैनेन्द्र कुमार का जन्मदिवस भी इसी माह है। जैनेन्द्र की भाषा सरल, प्रवाहमयी और प्रभावशाली है। उन्होंने हिन्दी गद्य को एक नया स्वरूप दिया। उनके साहित्य ने हिन्दी कथा साहित्य को पारम्परिक कथानकों से बाहर निकालकर एक नई दिशा दी। उनके कृतित्व के एक पहलू पर समर्पित आलेख से उन्हें स्मरण किया गया है।

अपने अल्प जीवनकाल में हिन्दी को एक नई पहचान देने वाले युगप्रवर्तक साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885) का इस माह 6 तारीख को पुण्य तिथि है। उन्होंने हिन्दी को साहित्यिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का माध्यम बनाया। उनके जीवनकाल में ही उन्हें

‘भारतेन्दु’ की उपाधि से सम्मानित किया गया, जिसका अर्थ है ‘भारत का चंद्रमा’। भारतेन्दु ने आधुनिक हिन्दी साहित्य की नींव रखी और इसे नई दिशा प्रदान की। उनका साहित्य और योगदान हमें यह सिखाता है कि भाषा और साहित्य को समाज की प्रगति और जागरूकता का माध्यम बनाना चाहिए। भारतेन्दु की उर्दू काव्य में चमक पर एक आलेख दिया जा रहा है।

तीन वर्ष पश्चात हम आधुनिक भारतीय रंगमंच के युगप्रवर्तक विजय तेंडुलकर की जन्मशती मनाएँगे। उनके नाटक न केवल मनोरंजन का माध्यम हैं, बल्कि समाज की जटिलताओं, मनुष्य के आंतरिक संघर्षों और सामाजिक अन्याय को उजागर करने का सशक्त माध्यम भी हैं। 6 जनवरी, 1928 को महाराष्ट्र के कोल्हापुर में जन्मे विजय तेंडुलकर ने बचपन में ही रंगमंच और साहित्य से जुड़ाव महसूस किया। स्कूल छोड़ने के बाद, उन्होंने पत्रकारिता भी की, जिसने उनके लेखन को वास्तविकता और सामाजिक मुद्दों के क़रीब ला दिया। तेंडुलकर ने अपने नाटकों में भारतीय समाज की कुरीतियों, अन्याय और सत्ता के दमनकारी स्वरूप को यथार्थवादी तरीक़े से चित्रित किया। उनकी रचनाएँ दर्शकों को झकझोरती हैं और सोचने पर मजबूर करती हैं। उन पर एक आलेख इस अंक में है।

अन्य नियमित स्तम्भ और विविध सामग्री तो इस अंक में दी ही गई है। आपकी प्रतिक्रिया वाले पत्रों की प्रतीक्षा रहेगी।

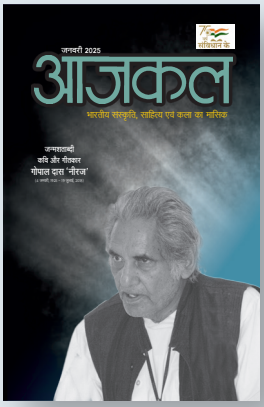

मुख्य सम्पादक : कुलश्रेष्ठ कमल

सम्पादक : फ़रहत परवीन

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार

सम्पादक आजकल

प्रकाशन विभाग,

कमरा नं. 601डी, सूचना भवन,

सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

दूरभाष : 011-24362915

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) : डी.के.सी. हृदयनाथ

आवरण सज्जा : बिंदु वर्मा

आजकल वर्ष भर घर मँगाने के लिए स्कैन करें QR कोड

वार्षिक शुल्क ट्रैकिंग सुविधा के साथ ₹434 और सामान्य डाक से मात्र ₹230

आजकल की सदस्यता लेने, पुराने अंक मँगाने, पत्रिका न मिलने की शिकायत या फिर विज्ञापन के लिए सम्पर्क करें–

फोन - 011-24367453 (सोमवार से शुक्रवार प्रातः 9:30 से 6:00 बजे तक)

अथवा pdjucir@gmail.com पर ईमेल करें या लिखें-

अभिषेक चतुर्वेदी, सम्पादक (प्रसार),

पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 779,

सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स,

लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

प्रकाशन विभाग के विक्रय केन्द्रों की सूची पृष्ठ 104 पर

www.publicationsdivision.nic.in

www.facebook.com/publicationsdivision

@DPD_India @dpd_india

ajkalhindi@gmail.com

पत्र

जीवन से निकटता की अनुभूति

विभिन्न साहित्यिक विधाओं में रचनाओं का एक समृद्ध परिदर्शन कराती पत्रिका 'आजकल' के नवम्बर 2024 अंक को पढ़ने का सुअवसर मिला। पत्रिका में विभिन्न रचनाकारों की प्रकाशित रचनाएँ– कविता, कहानी, ग़ज़ल आदि एक सुखद अनुभूति से ओत-प्रोत कराती है कि हिन्दी साहित्य के रचना-संसार का भविष्य उत्तरोत्तर सुदृढ़ होना अवश्यम्भावी है। इसी क्रम में प्रभात कुमार राय द्वारा कविवर आरसी प्रसाद सिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से जुड़े आलेख के पठन का भी अवसर प्राप्त हुआ।

कविवर आरसी की रचनाएँ मुझे भी भाती रही हैं। उनकी रचनाओं से जीवन की निकटता की अनुभूति होती रही है। उन्होंने ओजपूर्ण रचनाओं से लेकर बाल-साहित्य तक की रचना की है और अपनी साहित्यिक-यात्रा का सिद्ध प्रदर्शन किया है।

प्रभात कुमार राय ने कविवर आरसीजी से अपने पिता की मित्रता का उल्लेख करते हुए उनकी क्षमता का सटीक और सजीव चित्रण किया है। निश्चित रूप से यह संस्मरणात्मक आलेख उपयोगी तथा साहित्य सेवियों के लिए ज्ञानवर्धक तो है ही, शोधार्थियों के लिए भी पर्याप्त सहायक होगा।

-मधु रानी लाल, पटना (बिहार)

सारगर्भित अंक

नवम्बर 2024 अंक मिला। सिनेमा पर आधारित सारगर्भित अंक है। साहित्य और सिनेमा दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्य को हम पढ़कर आनंद उठाते हैं, वहीं सिनेमा को देखकर भी आनंद की अनुभूति होती है। सिनेमा के माध्यम से भी हिन्दी भाषा को विस्तार मिला है। अन्य भाषा भाषी लोगों ने भी हिन्दी सिनेमा देखकर इस भाषा के मर्म और साहित्य की बारीकियों को समझने की कोशिश है।

उत्कृष्ट फ़िल्मों को पुरस्कृत किए जाने से अच्छी फ़िल्म बनाने वालों का मनोबल बढ़ता है। सिनेमा पर आधारित विषयों पर सही मायने में लिखा जाए तो विस्तृत ग्रन्थ लिखा जा सकता है। इस अंक में सिनेमा के आवश्यक विषय-वस्तुओं पर चर्चा की गई है जो प्रशंसनीय है।

सुनील विक्रम सिंह की कहानी 'एक अभिशप्त जीनियस का आख्यान' शशांक जैसे नायक की सच्ची कहानी लगती है। अंक की अन्य रचनाएँ भी पसन्द आईं। लोकसंस्कृति पर आधारित हर अंक में एक रचना अवश्य दी जाए।

-शम्भू शरण सत्यार्थी, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

जन्मशती अंक

दिसम्बर 2024 अंक अपने साहित्य और संस्कृति के कलेवर के अनुरूप तीन सिने जगत की महान हस्तियों की जन्मशती पर पर्याप्त लेख व पुस्तक समीक्षा एक बानगी है। शोमैन राज कपूर दादा साहेब फाल्के पुरस्कार प्राप्त पिता के स्वयं उस पुरस्कार से सम्मानित एक निर्माता-निर्देशक व कलाकार थे। एक सामान्य परिवार से आने वाले मख़मली आवाज़ के धनी मोहम्मद रफ़ी के गाए गीत अभी भी लोगों की ज़ुबान पर है। शैलेन्द्र की पुत्री ने संस्मरण लिखकर गीतकार पिता को श्रद्धांजलि अर्पित की है जो 'तीसरी क़सम' के निर्माण के बाद बर्बाद हो चुके थे। नब्बे पार श्याम बेनेगल शतायु हों और भारत की खोज में लगे रहें। तीन साहित्यकार रघुवीर सहाय, मोहन राकेश और प्रभु जोशी की जयंती पर लेख स्मरणीय हैं।

विश्व की तीसरी सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाषा हिन्दी अभी भी नोबेल पुरस्कार से वंचित है लेकिन हान कांग के रूप में एक एशियाई महिला को कोरियाई भाषा के लिए पुरस्कृत करने के लिए समिति को बधाई! बिहार की लोकगायिका शारदा सिन्हा, मालवा की खेल परम्परा और अंतरराष्ट्रीय नृत्य महोत्सव सब कुछ एक साथ संकलन और संयोजन की अद्भुत छटा उपलब्ध है। इस अंक में प्रकाश मनु की समुद्र पर कविता सर्वाधिक प्रभावी लगी।

-यशवन्त पाल सिंह, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

हिन्दी के प्रति निष्ठा

दिसम्बर 2024 अंक पढ़ा। सम्पादकीय सारगर्भित और प्रासंगिक है। भोजपुरी और मैथिली की लोक गायिका शारदा सिन्हा पर आलेख वैचारिक है। मुझे शारदा सिन्हा को इलाहाबाद में कई बार सुनने का अवसर मिला है और आत्मीय मुलाक़ातें भी हुई हैं। यह संयोग भी अद्भुत है कि छठ पर उन्होंने सबसे अधिक गीत गाए हैं और छठ के ही दिन उनका निधन भी हुआ।

रघुवीर सहाय के काव्य पर लेख पढ़ा, जो पठनीय है। रघुवीर सहाय सिर्फ़ अज्ञेय के 'तारसप्तक' के ही कवि नहीं थे बल्कि 'दिनमान' पत्रिका के जब सम्पादक थे, उसे नया आयाम और ऊँचाई दी। बिहार के अकाल पर प्रसिद्ध लेखक फणीश्वरनाथ रेणु से उन्होंने रिपोर्ताज लिखवाया था। इसी तरह मोहन राकेश केवल एक प्रसिद्ध नाटककार और कहानीकार ही नहीं थे बल्कि 'सारिका' और 'धर्मयुग' जैसी पत्रिका का कुशल सम्पादन भी उन्होंने किया था।

गंभीर और वैचारिक सिनेमा के निर्माता-निर्देशक श्याम बेनेगल पर लेख वैचारिक और पठनीय है। ललित निबन्ध भी लालित्य लिए हुए है। कहानियाँ, कविताएँ सभी पठनीय हैं जो अंक को विशिष्ट बनाते हैं। कहानीकार और चित्रकार प्रभु जोशी का स्मरण भी सार्थक और प्रासंगिक है। जब वे इन्दौर आकाशवाणी में थे, मैं इन्दौर एक कार्यक्रम में गया था। उनसे एक कार्यक्रम में मुलाक़ात हुई।

'आजकल' को मात्र 22 रुपये में उपलब्ध करवा कर आप हिन्दी के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त कर रहे हैं।

-विवेक सत्यांशु, अल्लापुर, प्रयागराज (उत्तर प्रदेश)

...कारवाँ गुज़र गया ग़ुबार देखते रहे

कवि नीरज की ये विशेषता रही कि अपने प्रत्येक कवि सम्मेलन में वो एक नई कविता पढ़ते थे जो लोगों के अधरों पर स्वत: ही चढ़ जाया करती थी जिस कारण से वो सदा सामयिक और प्रासंगिक बने रहते थे। अपनी कालजयी कृति 'कारवाँ गुज़र गया ग़ुबार देखते रहे' को जब पहली बार उन्होंने दर्शकों-श्रोताओं के मध्य पढ़ा था तब उसकी धूम तत्क्षण ही सम्पूर्ण भारत वर्ष में मच गई। इस कविता को नीरज ने पहली बार 1954 में लखनऊ रेडियो स्टेशन से पढ़ा था। किसी भारतीय कवि की यह पहली कविता थी जिसने भारत की सीमा लाँघकर पाकिस्तान सहित अन्य विदेशी राष्ट्रों तक के साहित्य प्रेमियों को आकर्षित किया था।

सिनेमा और साहित्य का मेल जब-जब सिने गीत-संगीत में ढलकर हमारे समक्ष अपना परिणामी प्रभाव लिए जिन कुछ एक काव्य गीतों में उत्कृष्ट रंग-रूप के संग हृदय व्योम पर सुनहरा वर्ण लिए आच्छादित हुआ है तब-तब हिन्दी पद्य की मदिरा अपनी मधुरिम छटा लिए साहित्यानुरागी मन को अद्‌भुत रूप से तृप्त कर गई है। सिनेमा में साहित्यिक गीतों की ऐसी ही अविरल शृंखला में एक महत्वपूर्ण कवि-गीतकार के रूप में नीरज का स्थान विलक्षण है।

हिन्दी सिनेमा में गीत लेखन के लिए हिन्दी साहित्य जगत से आने वाले पहले प्रमुख कवि थे प्रदीप। उसके बाद आए गोपाल सिंह नेपाली और फिर आए कवि शैलेन्द्र। सातवें दशक में इसमें एक नाम और जुड़ा गोपाल दास सक्सेना 'नीरज' अर्थात् कवि नीरज का। हिन्दी काव्य-संसार में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लेने के बाद नीरज का सिनेमा से जुड़ना एक महत्वपूर्ण घटना थी। नीरज का प्रवास सिने जगत में लगभग आठ से दस वर्ष ही रहा और वह भी नियमित नहीं फिर भी इस अवधि में उन्होंने सिने गीतों को जो साहित्यिक कलेवर दिया तथा लोक संस्कृति, परम्परा एवं तत्त्वों का जिस प्रकार संयोजन किया वह अभूतपूर्व था। प्रतीकों के माध्यम से तथा हिन्दी पद्य संसार की छायावादी परम्परा के अग्रदूत के रूप में नीरज का सिने गीतों में योगदान एक विशिष्ट श्रेणी में आता है।

नीरज द्वारा सिनेमा में गीत लिखने के सन्दर्भ और उनकी योग्यता पर विवेचनात्मक विश्लेषण करने

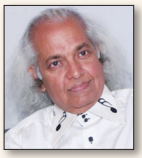

राजीव श्रीवास्तव
ई-मेल : rajeevrsvpshrivastav@gmail.com

के पूर्व उनके प्रारम्भिक जीवन, साहित्यिक कृतियों एवं उपलब्धियों का भान और ज्ञान होना आवश्यक है। अविभाजित भारत में तब अंग्रेज़ों का शासन था। उन दिनों के आगरा और अवध संयुक्त प्रान्त में इटावा ज़िले के महेवा ब्लॉक में पुरावली गाँव में नीरज का जन्म 4 जनवरी, 1925 को हुआ था और उनका नाम रखा गया गोपाल। वर्तमान में यह स्थान उत्तर प्रदेश राज्य का अंग है। मात्र छह वर्ष की आयु में पिता ब्रज किशोर सक्सेना का अकस्मात् निधन हो जाने से बालक गोपाल पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। घर-परिवार की आर्थिक स्थिति चरमरा चुकी थी। माँ का अपने इस पुत्र पर विशेष स्नेह और करुणा थी। बालपन से ही माँ बालक गोपाल को 'रामायण', 'महाभारत' की कहानी-कथा और धार्मिक गीत सुनाया करती थी। इसे सुन और गुन कर गोपाल का बाल मन ऐसे ही गीतों को गाने-गुनगुनाने लगा जिसका परिणाम ये हुआ कि बचपन से ही गोपाल का कण्ठ मधुर और सुरों से ओत-प्रोत होता चला गया। पुत्र की कुशाग्र बुद्धि से माँ परिचित थी जिस कारण वो अपने गोपाल को पढ़ाना चाहती थी। ऐसे में माँ ने अपना मन कड़ा करके बेटे को अपनी ननद के पास एटा भेज दिया जहाँ उसकी पढ़ाई सुचारु रूप से सुनिश्चित हो गई। विद्यालयी जीवन में गीत गाते हुए गोपाल छात्रों के मध्य अत्यन्त लोकप्रिय हो गए थे। ये वो समय था जब रेडियो पर के. एल. सहगल के गीतों की धूम हुआ करती थी। लोग सहगल के दीवाने थे और उन जैसा ही गाने की चेष्टा करते थे। अपनी मधुर गायकी से गोपाल मित्रों के सान्निध्य में सभी के इतने प्रिय हो गए थे कि लोग उन्हें 'सहगल' के नाम से पुकारने लगे। अपने फूफा और बुआ के यहाँ रहकर ही गोपाल दास सक्सेना ने हाई स्कूल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। जब गोपाल नौवीं कक्षा में थे तब उनके हाथ हरिवंशराय 'बच्चन' की 'निशा निमन्त्रण' लगी जिसे पढ़ते हुए उनके भीतर साहित्य का बीज अंकुरित होकर फलने-फूलने लगा। इसी अवधि में एटा में ही उन्हें स्थानीय कवि सम्मेलन में पहली बार मंच से कविता पाठ करने का अवसर मिला। इस कवि सम्मेलन में गोपाल दास सक्सेना ने अपने द्वारा रचित जो प्रथम कविता पढ़ी थी, उसकी प्रारम्भिक कुछ पंक्तियाँ ही उम्र के उत्तरार्ध में उन्हें स्मरण में रह गई थीं जिसे उन्होंने मेरे साथ कई-कई सम्पन्न बैठकों में से एक में साझा किया था जो इस प्रकार है, 'मुझको जीवन आधार नहीं मिलता है,/ आशाओं का संसार नहीं मिलता है,/ भवसागर में लहरों के आड़ोलन से, मैं टकराता फिरता तट के कण कण से,/ पर मुझे डुबाकर ग़र्क कहीं जो कर दे, ऐसा भी तो मझधार नहीं मिलता है,/

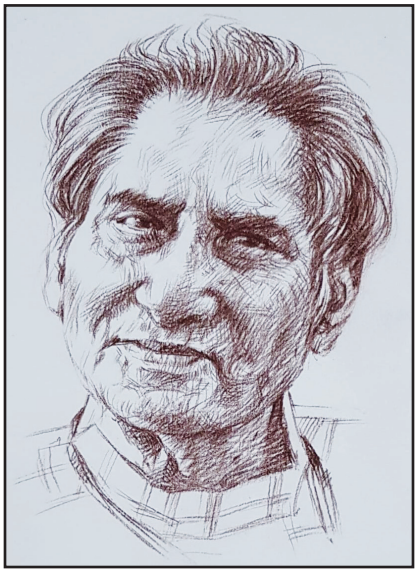

कवि-गीतकार नीरज (चित्रांकन : एस. प्रणाम सिंह)

चिरयुवा सुरीला गठजोड़– देव आनन्द और नीरज

मुझको जीवन आधार नहीं मिलता है'।

नीरज का प्रथम काव्य-संग्रह 'संघर्ष' वर्ष 1944 में प्रकाशित हुआ था। इस क्रम में उनके प्रमुख कविता-संग्रह एवं पुस्तकों में 'संघर्ष' (1944) के साथ ही 'अंतर्ध्वनि' (1946), 'विभावरी' (1948), 'प्राणगीत' (1950), 'दर्द दिया है' (1956), 'बदर बरस गई' (1957), 'मुक्तकी' (1958), 'दो गीत' (1958), 'नीरज की पाती' (1958), 'गीत भी अगीत भी' (1959), 'आसावरी' (1963), 'नदी किनारे' (1963), 'लहर पुकारे' (1963), 'कारवाँ गुज़र गया' (1964), 'फिर दीप जल गया' (1970), 'तुम्हारे लिए' (1972), 'नीरज की गीतिकाएँ' (1987) जैसे और भी संग्रह एवं पुस्तकों की एक दीर्घ सूची है। इन पुस्तकों में नीरज ने अपने जीवन अनुभवों से प्रेरित होकर प्रेम, शृंगार, मिलन, विरह, प्रकृति, शौर्य, दर्शन, आध्यात्म जैसे अनेकों रंगों और कलेवरों से सुसज्जित ढेरों गीत लिखे हैं जो उनके स्वाभाविक सृजन की एक सहज अभिव्यक्ति के रूप में आज साहित्य जगत की धरोहर बनकर मानव संसार को सम्पन्न किए हुए है। नीरज का जीवन संघर्ष अपने-आप में एक ऐसा कथानक है जिसमें अभाव से भाव के मध्य दुःख, दर्द, बिछोह, पीड़ा, विरक्ति के ढेरों ताने-बाने की संगत में जूझारूपन की एक ऐसे तत्त्व का दर्शन होता है जो उनके व्यक्तित्व को विलक्षण आभा से भरकर उन्हें आशावादी का सृजक रूप प्रदान करता है। शब्द-स्वर-सुर की त्रिवेणी की धारा में नीरज का साहित्यिक उपक्रम तथा ज्ञान के पुँज में व्यवहारिक अभिव्यंजना का जो पुट समाहित है वह उन्हें अपने पूर्ववर्ती, समकालीन तथा आगत पीढ़ी के रचनाकारों से सर्वथा पृथक एवं विशिष्ट बनाता है। जिन 'बच्चन' से प्रेरित होकर नीरज काव्य में छायावाद और गीत विधा के चितेरे बनकर अपने प्रारम्भिक काव्य सृजन की समयावधि में ही तब के स्थापित कवियों-शायरों के समकक्ष आ खड़े हुए थे वो उनकी विलक्षण प्रतिभा के साथ ही उनके वैचारिक वैभव तथा अद्‌भुत कल्पनाशीलता के कलात्मक पक्ष को भी साथ-साथ बिम्बित-प्रतिबिम्बित करता रहा है जो उन्हें साहित्य का राजकुमार के रूप में तब ही स्थापित कर गया था। यह उपलब्धि तथा यह वृत्ति-प्रकृति नीरज के प्रौढ़ होते रूप में भी चिरयुवा के नैसर्गिक अलंकरण को अनवरत पोषित करती रही है।

टुकड़ों-टुकड़ों में नीरज के संग मेरी

गीतों पर विमर्श : लेखक और गीतकार नीरज (वर्ष 1998)

पुणे में एक काव्य पाठ के दौरान नीरज, साथ में हैं संगीतकार कल्याणजी-(आनन्दजी)

ढेरों भेंट में अपने जीवन की गाथा सुनाते हुए वो बहुत कुछ अनायास ही कई ऐसे प्रसंग भी छेड़ दिया करते थे जो अनसुने होते थे। ऐसी ही एक कथा उन्होंने मुझे वर्ष 1943 में कलकत्ता में आयोजित किए गए अखिल भारतीय कवि सम्मेलन की सुनाई थी। ये वो समय था जब बंगाल अकाल की चपेट में था। अनाज और भोजन का तब ऐसा विकट संकट था जिसमें उन्होंने स्वयं इंसान को कुत्ते से रोटी छीनते हुए, उसके लिए लड़ते-झगड़ते हुए देखा था। एटा के स्थानीय कवि-सम्मेलन के पश्चात् तब के कलकत्ता में युवा नीरज ने पहली बार ख्याति प्राप्त वरिष्ठ कवियों के संग मंच साझा किया था। अतीत में व्यतीत हो चुके इस कार्यक्रम का स्मरण करते हुए उन्होंने उल्लेख किया था कि वो स्वयं और गोपाल सिंह नेपाली ऐसे युवा कवि थे जिन्हें दर्शकों ने अत्यधिक सराहा था। गाँधी के 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के ताप से उत्सर्जित उत्साह ने युवाओं को राष्ट्र के स्वतन्त्रता संग्राम के प्रति समर्पित कर दिया था। युवा नीरज ने इसी कवि सम्मेलन में अपनी क्रान्तिकारी कविता पढ़ी थी, 'मैं विद्रोही हूँ, जग में विद्रोह कराने आया हूँ।' सामान्य से विशेष और फिर विशिष्ट बनने का क्रम नीरज का प्रारम्भ हो चुका था। लम्बे, हृष्ट-पुष्ट, सुडौल काया, सुघड़ देहयष्टि, आकर्षक व्यक्तित्व और मधुर कण्ठ के स्वामी नीरज के गीत देशभर में गाए और गुनगुनाए जाने लगे थे। मेरठ कॉलेज, मेरठ में वो प्राध्यापक थे और उन्हें वहाँ से मात्र इस कारण से त्यागपत्र देना पड़ा क्योंकि वे छात्राओं के मध्य अत्यन्त लोकप्रिय थे।

नीरज की ये विशेषता रही कि अपने प्रत्येक कवि सम्मेलन में वो एक नई कविता पढ़ते थे जो लोगों के अधरों पर स्वतः ही चढ़ जाया करती थी जिस कारण वो सदा सामयिक और प्रासंगिक बने रहते थे। अपनी कालजयी

कृति 'कारवाँ गुज़र गया ग़ुबार देखते रहे' को जब पहली बार उन्होंने दर्शकों-श्रोताओं के मध्य पढ़ा था तब उसकी धूम तत्क्षण ही सम्पूर्ण भारत वर्ष में मच गई। इस कविता को नीरज ने पहली बार 1954 में लखनऊ रेडियो स्टेशन से पढ़ा था। किसी भारतीय कवि की यह पहली कविता थी जिसने भारत की सीमा लाँघकर पाकिस्तान सहित अन्य विदेशी राष्ट्रों तक के साहित्य प्रेमियों को आकर्षित किया था। अपनी इस सर्वथा अनूठी कविता में नीरज ने जो बिम्ब, प्रतीक, रूपक और प्रतिमानों को गढ़ा था वैसा पूर्व में हिन्दी-उर्दू साहित्य में किसी भी कवि-शायर ने नहीं रचा था। इस गीत की अपार लोकप्रियता और ख्याति के अपूर्व ओज का ही परिणाम था कि नीरज को हिन्दी सिनेमा में गीत लिखने का आमन्त्रण मिल गया।

'नई उमर की नई फ़सल' (1966) के निर्देशक आर. चन्द्रा थे जो पूर्व में 'बरसात की रात' (1960) जैसी सफल फ़िल्म का निर्माण कर चुके थे। इस फ़िल्म के संगीतकार रोशन थे जिनके संगीत की धूम तब सुरीले और कर्णप्रिय सरगम का पर्याय माना जाता था। इन्हीं रोशन के ही संगीत में नीरज के साहित्यिक गीतों को समेट कर फ़िल्म 'नई उमर की नई फ़सल' में पिरोया गया था। अपनी पहली सिने रचना के रूप में नीरज ने फ़िल्म 'नई उमर की नई फ़सल'(1966) में प्रथम गीत अर्पित किया 'स्वप्न झरे फूल से, गीत चुभे शूल से ...कारवाँ गुज़र गया ग़ुबार देखते रहे', जिसे वो वर्षों पहले ही लिख चुके थे। इसी गीत से हिन्दी-उर्दू साहित्य में नीरज की प्रसिद्धि शीर्ष पर पहुँच चुकी थी। रोशन के संगीत में फ़िल्म के लिए इसे स्वर दिया था मो. रफ़ी ने। इस गीत की धुन वैसी ही रखी गई जिस मीटर में नीरज इसे कवि सम्मेलनों और मुशायरों में गाया करते थे। रोशन ने इसी धुन को और निखार कर, वाद्य वृंदों को सजा-सँवार कर इसे एक आकर्षक रूप दे दिया। लोक साहित्य के रंग में इस फ़िल्म के लिए नीरज का एक अन्य गीत था- 'मेरा सैंया गुलबिया का फूल, हमारो रंग केसरिया' परन्तु जिस एक अन्य गीत की चर्चा यहाँ महत्वपूर्ण है वह था साहित्य के अप्रतिम रंगों से रंगा मुकेश के स्वर-सौन्दर्य की अनूठी प्रस्तुति- 'देखती ही रहो आज दर्पण न तुम, प्यार का ये महूरत निकल जाएगा।' इस फ़िल्म के समस्त गीत नीरज के ही लिखे हुए थे। फ़िल्म 'नई उमर की नई फ़सल' के निर्माण में विलम्ब के कारण इसके प्रदर्शन के पूर्व ही चन्द्रशेखर निर्देशित एवं अभिनीत फ़िल्म 'चा चा चा' (1964) का प्रदर्शन हो चुका था जिसमें नीरज का लिखा गीत 'ख़ुशी जिसने खोजी वो धन ले के लौटा, हँसी जिसने खोजी चमन ले के लौटा, मगर प्यार को खोजने जो चला वो न तन ले के लौटा न मन ले के लौटा; सुबह ना आई शाम ना आई, जिस दिन तेरी याद न आई, याद न आई, सुबह न आई शाम न आई' भी सम्मिलित था। इक़बाल क़ुरेशी के संगीत में इस गीत को मो. रफ़ी ने गाया था और प्रदर्शन के आधार पर इसे ही लोग नीरज के प्रथम सिने गीत के रूप में जानते और मानते हैं पर सैद्धान्तिक रूप से नीरज का प्रथम सिने गीत 'कारवाँ गुज़र गया ग़ुबार देखते रहे' ही कहा जाएगा। साहित्य की पतवार लिए नीरज ने फ़िल्म 'सती नारी' (1965) एवं 'मझँली दीदी' (1967) के गीतों के साथ फ़िल्म 'कन्यादान' (1967) के लिए कई लोकप्रिय गीत लिखे जिसमें मो. रफ़ी का गाया 'लिखे जो ख़त तुझे वो तेरी

नीरज, लता मंगेशकर, देव आनन्द, सचिन देव बर्मन और किशोर कुमार

याद में हज़ारों रंग के नज़ारे बन गए, सवेरा जब हुआ तो फूल बन गए जो रात आई तो सितारे बन गए' अत्यधिक लोकप्रिय हुआ था। शंकर-जयकिशन के संगीत में फ़िल्म 'चंदा और बिजली' (1969) में मन्ना डे का गाया 'काल का पहिया घूमे भइया लाख तरह इन्सान चले' में समय की महिमा बताकर नीरज ने सन्देश सम्प्रेषण का नूतन प्रभात जागृत किया।

फ़िल्म 'प्रेम पुजारी' (1970) में अपनी अद्‌भुत साहित्यिक छटा बिखेरने वाले नीरज की भेंट चिरयुवा अभिनेता देव आनन्द से मुम्बई के एक कवि सम्मेलन में हुई जिसमें देव मुख्य अतिथि थे। गीतकार शैलेन्द्र के अकस्मात् अवसान से सिने गीत लेखन में जो रिक्तिका आई थी उसकी पूर्ति का तत्त्व देव आनन्द को नीरज में दिखा। उन्होंने तत्क्षण ही नीरज को अपनी आगामी फ़िल्म 'प्रेम पुजारी' में गीत लिखने का आमन्त्रण दिया। अगले ही दिन देव नीरज को लेकर संगीतकार सचिन देव बर्मन के घर पहुँचे। बर्मन दा ने अनमने मन से नीरज को ऊपर से नीचे तक देखा और मन-ही-मन सोचा कि ये व्यक्ति फ़िल्म में क्या गीत लिखेगा! सचिन देव बर्मन ने नीरज को एक शब्द दिया 'रंगीला' और एक धुन बताई, कहा कि इसी मीटर पर गीत लिखना है और वो 'रंगीला' शब्द से ही प्रारम्भ होना है। साथ ही उन्होंने कथानक का वो दृश्य-परिदृश्य भी बताया जिस पर गीत लिखा जाना था। किसी कवि-गीतकार के लिए सिनेमा हेतु इस प्रकार से गीत लिखने का यह कार्य एक चुनौती था जिसे नीरज ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। दिए गए धुन और मीटर पर लिखने का नीरज का यह प्रथम अवसर था। नीरज ने उसी रात ये गीत लिख लिया और प्रातः देव आनन्द को दूरभाष पर सूचित कर दिया कि गीत पूरा हो गया है। अचम्भित देव भी अवाक थे कि इतने कम समय में ही कोई इतने जटिल विषय पर गीत कैसे लिख सकता है? देव को विश्वास नहीं हुआ और वे तत्काल ही नीरज के पास उस होटल में पहुँच गए जहाँ उन्होंने उनके ठहरने की व्यवस्था कर रखी थी। देव ने नीरज से कहा कि पहले मुझे सुनाओ जो लिखा है फिर हम बर्मन दा के पास चलेंगे। गीत सुनते ही देव आनन्द हर्ष के

अतिरेक में झूम उठे, उनके मुख से निकला- "वंडरफ़ुल नीरज, दिस इज़ मिरकल!" जब ये दोनों सचिन देव बर्मन के घर पर पहुँचे तो वो भी आश्चर्य में पड़ गए और कहा, "इतने थोड़े समय में गीत कैसे लिख लिया बाबा? ठीक है मुझे गीत सुनाओ।" नीरज के मुख से शब्द फूट पड़े– 'रंगीला रे, तेरे रंग में यूँ रंगा है मेरा मन, छलिया रे न बुझे है किसी जल से ये जलन, रंगीला रे'। अब सचिन देव के अचम्भित अवाक होने का समय था। जिसकी कल्पना उन्होंने स्वप्न में भी नहीं की थी वो कार्य नीरज ने करके दिखा दिया था। साहित्य के दर्पण में प्रतीकों के माध्यम से नीरज ने उपमाओं और बिम्बों को मन में उठते भावनाओं के ज्वार संग जिस कलात्मक रूप में उकेरा था उसने सचिन दा को निःशब्द कर दिया था। सचिन देव बर्मन और नीरज का यह गठजोड़ जीवन-पर्यन्त चला। सचिन देव बर्मन ने 'रंगीला रे' गीत में गहराई तक पिरोए गए नीरज के शब्द लोक में गूँथे सम्वेदना की सूक्ष्म भंगिमाओं को अपने संगीत एवं साज़ों के प्रयोग से जिस कुशलता से उभारा है कुछ वैसा ही लता मंगेशकर ने इसे अपने स्वर कौशल से जीवन्त किया है। 'प्रेम पुजारी' के एक अन्य गीत में नीरज अभिव्यक्त करते हैं– 'फूलों के रंग से दिल की क़लम से तुझको लिखी रोज़ पाती'।

उसी काल खण्ड में राज कपूर अपने कविराज शैलेन्द्र के निधन के पश्चात् अपनी परिकल्पना को गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करने के लिए एक प्रतिभावान कल्पनाशील वैचारिक सृजनकर्ता की खोज में व्याकुल थे। नीरज की कविताओं के अनन्य प्रशंसकों में एक पृथ्वीराज कपूर भी थे। वर्षों पूर्व कानपुर के एक कवि सम्मेलन में पृथ्वीराज नीरज को

अमर गीतों के सृजक : एस.डी. बर्मन और नीरज

सुन चुके थे। तब से इन दोनों के मध्य जो एक अटूट बन्धन बँधा था, वो आजीवन रहा। मुम्बई आने पर नीरज की बैठक पृथ्वीराज के साथ होती ही थी। राज कपूर भी इस बात से परिचित थे और उन्होंने अब तक सिनेमा में नीरज के गीतों को भी सुन रखा था। राज ने अपने पिता पृथ्वीराज से आग्रह किया कि वे नीरज से उनकी भेंट करा दें। फिर क्या था, चेम्बूर स्थित आर.के. स्टूडियो में साँझ ढलने और रात्रि के आगमन की मिलन बेला में नीरज और राज कपूर की प्रथम भेंट में ही 'मेरा नाम जोकर' (1970) की कहानी पर विमर्श प्रारम्भ हुआ। नीरज ने पूरी कथा सुनने के पश्चात् कहा, 'कहता है जोकर सारा ज़माना, आधी हक़ीक़त आधा फ़साना, चश्मा उतारो फिर देखो यारो दुनिया नई है चेहरा पुराना'।

नीरज की इन पंक्तियों को सुनते ही राज बहुत ख़ुश हुए और कहा, "अरे, आपने तो मेरी फ़िल्म का पूरा का पूरा निचोड़ ही इसमें समा दिया है।" 'आवारा' की कथा जब के. ए. अब्बास शैलेन्द्र को सुना रहे थे तब अंत

में राज कपूर ने शैलेन्द्र से पूछा था कि उन्हें कैसी लगी ये कहानी? शैलेन्द्र तत्क्षण ही बोल उठे थे– 'आवारा हूँ या गर्दिश में हूँ आसमान का तारा हूँ'। इसे सुनते ही अब्बास चकित रह गए और उन्होंने राज से पूछा कि ये तुम किसे लेकर मेरे पास आए हो? जो बात मैं घण्टो यहाँ बैठा बाँच रहा था, उसका सार तो इसने अपनी दो पंक्ति में ही कह दिया। लगभग दो दशक पश्चात् इतिहास ने अपने-आप को दोहराते हुए इस बार राज कपूर को विस्मय में डाल दिया था जब नीरज की प्रतिभा से वे परिचित हुए। साहित्यिक कलेवर में किस प्रकार एक दर्शन, एक विचार और एक सन्देश को निरुपित किया जाता है, उसे नीरज ने जोकर के लिए चरितार्थ किया था। इसी तरह 'ए भाई ज़रा देख के चलो आगे ही नहीं पीछे भी, दाएँ ही नहीं बाएँ भी, ऊपर ही नहीं नीचे भी' में भी नीरज ने एक जोकर के सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा जीवन के उसके पृथक-पृथक सोपानों को जिस प्रकार जीवन्त कर दिखाया था उसने भी राज कपूर को नीरज की प्रतिभा और उनकी अद्‌भुत साहित्यिक दृष्टि का लोहा मनवा दिया। जीवन के दर्शन को आम बोलचाल की भाषा में साहित्य की गरिमा के साथ नीरज ने सहज रूप में अपने इस एक गीत में अंकित किया था।

सिने गीतों में साहित्य पिरोने के साथ ही नीरज ने लोक भाषा के शब्दों के नूतन प्रयोग तथा उसके पार्श्व में मूक ध्वनि को जिस प्रकार अपने ढेरों सिनेमाई गीतों में मुखर किया है वो अपने-आप में स्वतन्त्र एवं पृथक रूप का एक ऐसा उदाहरण है जो नीरज से प्रारम्भ होकर उन्हीं पर समाप्त भी हो गया। मेरे साथ ही बतकही करते हुए उन्होंने बताया था कि पहले जयकिशन के निधन और आगे चलकर सचिन देव बर्मन के चले जाने पर उनका गीत-संगीत के संग वाला अपेक्षित तारतम्य ही टूट गया। अन्य जो उपलब्ध संगीतकार थे वो सब पाश्चात्य संगीत की धारा में बहते जा रहे थे जिस कारण फ़िल्मों का परिवर्तित होता वातावरण नीरज को रास नहीं आया। मनोज कुमार अभिनीत फ़िल्म 'पहचान' (1970) में शंकर-जयकिशन के संगीत में नीरज के जिस एक गीत ने संगीत प्रेमियों के अधर पर अपना डेरा लगाया था वो मुकेश के स्वर में एक कालजयी रचना बनकर आज भी मानवता का पाठ पढ़ा रही है - 'बस यही अपराध मैं हर बार करता हूँ, आदमी हूँ आदमी से प्यार करता हूँ'... इस पंक्ति के लिए नीरज स्वयं अंत तक कहा करते थे कि यह मेरे जीवन का सूत्र वाक्य है।

सिने गीतों की सूची में नीरज के कालजयी गीतों की अपनी एक पृथक पहचान है। ऐसे ही साहित्य से पगे गीतों में जिन गीतों को प्रमुखता से स्मरण किया जाता है उनमें 'मेरा मन तेरा प्यासा', 'शोख़ियों में घोला जाए', 'चूड़ी नहीं ये मेरा दिल है', 'दिल आज शायर है', 'जीवन की बगिया महकेगी', 'हे मैंने क़सम ली', 'जैसे राधा ने माला जपी श्याम की', 'धीरे-से जाना खटियन में ओ खटमल', 'पूछो तो यारों हम कौन हैं - छुपे रुस्तम हैं', 'खिलते हैं गुल यहाँ', 'ओ मेरी शर्मीली', 'मेघा छाए आधी रात', 'आज मदहोश हुआ जाए रे', 'जबसे लगन लगाई रे उमर भर नींद न आई रे', 'पानी में जले मेरा गोरा बदन', 'जन्नत है देखनी तो किसी दिल में आशियाँ बना', 'काल का पहिया घूमे भइया', 'ताक़त वतन की हमसे है', के साथ ही और भी ढेरों गीत हैं। साहित्य और सिनेमा के मध्य एक सेतु का काम करते रहे हैं फ़िल्मों में नीरज के गीत। ❑

काव्य-मंचों पर गीत का जादू चलाने वाले यशस्वी गीतकार और सुविख्यात कवि नीरज ने लगभग तीन चौथाई सदी तक कवि-सम्मेलन के मंच पर एकछत्र राज किया। देशभर में ही नहीं, उनकी ख्याति अंतरराष्ट्रीय काव्यमंच पर भी फैली हुई थी। कवि-सम्मेलनों में उनकी उपस्थिति-मात्र ही एक नशा होती थी। पिछले सत्तर-पचहत्तर बरसों में काव्य-मंच पर कितने ही लोकप्रिय कवि आए-गए, पर कोई भी नीरज के करिश्माई आभामंडल के आगे टिक नहीं पाया। धूमकेतु की तरह चमककर कुछ देर बाद ही ओझल हो गया।

स्वीकार और अस्वीकार के बीच

कवियों, रचनाकारों के सन्दर्भ में संस्कृत में एक स्मरणीय सुभाषित है–

'जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः
नास्ति येषां यशःकाये जरणामरणजं भयम्।'

अर्थात् सत्कर्म करने वाले, काव्य में पारंगत और कवियों में श्रेष्ठ, जो रचनाकार अपनी कीर्ति और शरीर के पालन-पोषण की चिन्ता नहीं करते तथा बुढ़ापे और मृत्यु से भी नहीं डरते, वे ही अपने जीवन में वास्तविक विजेता हैं।

ऐसे ही महापुरुष अपने यश के माध्यम से हमारे बीच सदा अपनी उपस्थिति बनाए रखते हैं। उन्हें अपने बीच पाकर हम भी स्वयं को धन्य अनुभव करते हैं। एक जीवित समाज अपने पूर्वजों की छवियों को जीवित बनाए रखने के लिए कोई-न-कोई उपक्रम करता रहता है। इस उपक्रम में वह स्वयं को भी जीवंत अनुभव करता ही है। जन्मशती समारोह जैसे आयोजन एक तरह से इसी जीवंतता का उत्सव हैं।....

यह समय कीर्तिशेष साहित्यकारों, संस्कृतिकर्मियों और ललित कलाओं से जुड़े महत्वपूर्ण कलाकारों, रचनाकारों की जन्मशती का समय है। कुछ समय पूर्व हम फ़िल्मों से जुड़े रहे कवि-गीतकार शैलेन्द्र, गायक मुकेश, महान कलाकार दिलीप कुमार और देव आनंद जैसी विभूतियों की जन्मशताब्दी मना चुके हैं। इन दिनों महान फ़िल्मकार, अभिनेता राज कपूर के अलावा 'वंशी और मादल' जैसी श्रेष्ठ काव्यकृति के सर्जक सुकवि ठाकुर प्रसाद सिंह और साहित्य के साथ-साथ कवि-सम्मेलनों और फ़िल्मों से जुड़े अत्यंत लोकप्रिय कवि

योगेन्द्र दत्त शर्मा
ई-मेल : yogendradattsharma3008@gmail.com

गोपाल दास नीरज की जन्मशती मना रहे हैं। सुखद संयोग है कि इस वर्ष अर्थात् 2025 की शुरुआत यशस्वी कवि नीरज की जन्मशताब्दी से हो रही है।

काव्य-मंचों पर गीत का जादू चलाने वाले यशस्वी गीतकार और सुविख्यात कवि नीरज ने लगभग तीन चौथाई सदी तक कवि-सम्मेलन के मंच पर एकछत्र राज किया। देशभर में ही नहीं, उनकी ख्याति अंतरराष्ट्रीय काव्यमंच पर भी फैली हुई थी। कवि-सम्मेलनों में उनकी उपस्थिति-मात्र ही एक नशा होती थी। पिछले सत्तर-पचहत्तर बरसों में काव्य-मंच पर कितने ही लोकप्रिय कवि आए-गए, पर कोई भी नीरज के करिश्माई आभामंडल के आगे टिक नहीं पाया और धूमकेतु की तरह चमककर कुछ देर बाद ही ओझल हो गया।

नीरज मूलतः और अनिवार्यतः रोमांटिक कवि हैं लेकिन उनकी यह रोमांटिकता निरी हवाई नहीं है। यह स्वप्नदर्शिता से उपजी रोमांटिकता है, जिसमें अपने समय, समाज और जनजीवन से जुड़ा यथार्थ और उसकी विरूपताओं को बदलने और बेदख़ल करने का क्रान्तिकारी स्वप्न देखने और उसे साकार करने का काव्योचित जज़्बा, दर्प, आग्रह और हठधर्मी भी शामिल है। नीरज के कविता-संसार में प्रेम, शृंगार और रूमानी संवेदनाओं की भरमार भले ही दिखाई देती हो, लेकिन उसमें व्याप्त सामाजिक सरोकारों की अनदेखी करना भी मुश्किल ही है। उनकी कविताओं में जीवन अपनी व्यापकता में पूरी शिद्दत से हिलोरें मारता है, तो मृत्यु-बोध भी लगातार अपनी उपस्थिति दर्ज कराता चलता है। जीवन में आने वाली विडंबनाओं से साक्षात्कार है, तो उसकी निःसारता के दर्शन भी होते रहते हैं। दुःख-दर्द, अभाव, त्रासदी, विभीषिका भी वहाँ बार-बार दस्तक देते हुए नज़र आते हैं। यह सब कभी स्पष्ट तो कभी दार्शनिकता के आवरण में लिपटा होता है।

एक बड़ा कवि स्वाभाविक रूप से चिन्तक, विचारक और दार्शनिक होता ही है। आशा-निराशा, आदर्श-यथार्थ, सपने, उम्मीदें, आस्था और विश्वास उसकी चिन्तन-प्रक्रिया में एक साथ चलते रहते हैं। 'क्या हो रहा है' और 'क्या होना चाहिए' के बीच उसका कवि-मन लगातार झूलता रहता है। ज़िन्दगी के दुःख-दर्द, संघर्ष, हादसे, परेशानियाँ, विसंगतियाँ और विडम्बनाएँ उसे निरंतर विचलित और आंदोलित करती रहती हैं। नीरज भी कोई अपवाद नहीं हैं। उन्होंने अपने गीतों में ज़िन्दगी के हर रंग को समेटा है। सुख-दुःख, हर्ष-विषाद के हर पक्ष को गाया है। इन्हीं से उनका जीवन-दर्शन भी विकसित हुआ है। 'फूलों के रंग से, दिल की क़लम से, तुझको लिखी रोज़ पाती' लिखने वाले नीरज ने जीवन की त्रासदी के भोक्ता और साक्षी मनुष्य की मनःस्थिति को स्वर दिया तो 'कारवाँ गुज़र गया' जैसी कालजयी रचना को जन्म दिया। इस गीत ने उन्हें देश-विदेश में इतनी लोकप्रियता दिलाई कि कवि और कविता एक-दूसरे के पर्याय ही बन गए। फ़िल्म में शामिल होने के बाद तो इसने सफलता के ऐसे झंडे गाड़े कि लोग चकित रह गए। संगीतकार रोशन की धुन और मोहम्मद रफ़ी की गायकी ने इसमें अनोखा जादू भर दिया।

यह गीत जीवन की करुण-दारुण महागाथा का ब्यौरा देते हुए आदमी की

असहायता को शब्द देता है। गीत का प्रारम्भ इन पंक्तियों से होता है–

'स्वप्न झरे फूल-से
मीत चुभे शूल-से
लुट गए सिंगार सभी बाग़ के बबूल-से
और हम खड़े-खड़े बहार देखते रहे
कारवाँ गुज़र गया, ग़ुबार देखते रहे!'

इसके बाद जीवन की विडम्बना इस तरह सामने आती है–

'नींद भी खुली न थी कि हाय धूप ढल गई
पाँव जब तलक उठे कि ज़िन्दगी फिसल गई
पात-पात झर गए कि शाख-शाख जल गई
चाह तो निकल सकी न, पर उमर निकल गई
गीत अश्क बन गए
छंद हो हवन गए
साथ के सभी दिए धुआँ पहन-पहन गए
और हम झुके-झुके
मोड़ पर रुके-रुके
उम्र के चढ़ाव का उतार देखते रहे!'

यह गीत काफ़ी लम्बा है.... पाँच पदों का। फ़िल्म में इसके सम्भवतः तीन या चार पद ही लिए गए हैं, इसलिए अधिकांश लोग पूरे गीत के बारे में नहीं जानते लेकिन इसका आख़िरी पद बेहद मार्मिक और आदमी के भाग्य की विडम्बना का त्रासद चित्र प्रस्तुत करता है–

'एक रोज़ एक गेह चाँद जब नया उगा
नौबतें बजीं, हुई छटी डठौन, रतजगा
कुंडली बनी कि जब मुहूर्त पुण्यमय लगा
इसलिए कि दे सके न मृत्यु जन्म को दग़ा
एक दिन न पर हुआ
उड़ गया पला सुआ
कुछ न कर सके शकुन, न काम आ सकी दुआ
और हम डरे-डरे
नीर नैन में भरे
ओढ़कर कफ़न पड़े मज़ार देखते रहे!
चाह थी न, किन्तु बार-बार देखते रहे!
कारवाँ गुज़र गया, ग़ुबार देखते रहे!'

इस गीत ने नीरज को रातोंरात प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँचा दिया और उन पर फ़िल्मी गीतकार का ठप्पा लग गया। हालाँकि शैलेन्द्र और इंदीवर के बाद नीरज ऐसे गीतकार हुए, जिन्होंने फ़िल्मों में हिन्दी कविता की गंभीरता और विविधता को अधिकाधिक पुष्ट करते हुए फ़िल्मी गीतों को समृद्ध किया। फ़िल्म 'नई उमर की नई फ़सल' (जिसमें उक्त गीत शामिल किया गया था) में यह विविधता स्पष्ट नज़र आती है। शृंगार से लेकर लोक-तत्त्व और समाजवाद तक हर भाव-बोध उसमें समाहित है। 'हमारो रंग केसरिया' हो या 'देखती ही रहो आज दरपन न तुम' या फिर 'आज की रात बड़ी शोख़, बड़ी नटखट है' ...ऐसे ही रेखांकनीय गीत हैं।

'आज की रात...' शीर्षक गीत में नीरज समाजवादी विचारधारा के पोषक के रूप में नज़र आते हैं। यहाँ उनका स्वर फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ और साहिर लुधियानवी के स्वर से किसी भी तरह कम नहीं है। पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं–

'पर ठहर, वो जो वहाँ लेटे हैं फुटपाथों पर
लाश भी जिनकी कफ़न तक न यहाँ पाती है

और वो झोंपड़े, छत भी न है सर पर जिनके

छाते छप्पर ही जहाँ ज़िन्दगी सो जाती है
पहले इन सबके लिए एक इमारत गढ़ लूँ
फिर तेरी माँग सितारों से भरी जाएगी...
आज तो तेरे बिना नींद नहीं आएगी!'

नीरज के गीतों को फ़िल्मों में अपार सफलता मिली। उनके गीत सर्वाधिक सफल और लोकप्रिय हुए। आलम यह था कि फ़िल्म भले ही न चली हो, लेकिन उसमें नीरज के लिखे गीतों को ज़बरदस्त सफलता मिली। 'काल का पहिया घूमे भइया', 'आदमी हूँ, आदमी से प्यार करता हूँ', 'ऐ भाई ज़रा देखके चलो', 'एक रंग, एक रूप तेरे-मेरे सपने', 'एक पाँव चल रहा अलग-अलग', 'प्रेम के पुजारी, हम हैं रस के भिखारी', 'चूड़ी नहीं, ये मेरा दिल है', 'दिल आज शायर है, ग़म आज नग़मा है' जैसे गीत आज भी अपने शब्दों, भावों और कर्णप्रिय संगीत के कारण संगीत-प्रेमियों के दिलों में अपनी जगह बनाए हुए हैं।

नीरज फ़िल्मों के एक कामयाब गीतकार तो बन गए, पर गंभीर क़िस्म के साहित्य-प्रेमियों के बीच अपनी जगह बनाने में सफल नहीं हो पाए। कवि-सम्मेलन का कवि होने का तमग़ा तो पहले से ही लगा था, अब फ़िल्मी गीतकार होने का ठप्पा और लग गया। एक ओर एक बहुत बड़ा श्रोता-वर्ग था, जो उनकी कविताओं का प्रशंसक था, तो दूसरी ओर कविता के प्रबुद्ध अध्येता उन्हें गंभीरता से नहीं ले रहे थे। यह उनके कवि की बहुत बड़ी विडम्बना थी। स्वयं नीरज भी इससे बेपरवाह रहे। वह कविता की श्रुति-परम्परा के बेताज बादशाह थे। वह इसी से संतुष्ट रहे। एक तरह से उन्होंने भी आलोचकों को अँगूठा दिखाया।

माना जाता है कि नीरज के साहित्यिक अवदान की उपेक्षा करने वाले आलोचकों का रवैया पूर्वाग्रहग्रस्त और पक्षपातपूर्ण रहा है। इसके पीछे सम्भवतः नीरज की प्रारम्भिक प्रेम-शृंगारपरक रूमानी रचनाओं के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व से जुड़े हुए वे ललित प्रसंग भी रहे, जिनके चलते वह जीते जी एक किंवदंती बन गए थे। इस सबके आधार पर उनकी छवि एक मामूली-से इश्कमिज़ाज चालू कवि की बना दी गई थी और उसके तहत ही उनका साहित्यिक मूल्यांकन होता रहा। यह आलोचना इतनी एकांगी और पूर्वाग्रहग्रस्त रही कि कभी-कभी तो दुराग्रहपूर्ण लगने लगती है। मिसाल के लिए नीरज का एक गीत है–

'देखती ही रहो, आज! दरपन न तुम
प्यार का यह महूरत निकल जाएगा!'

इसमें 'महूरत' शब्द पर आपत्ति करते हुए एक आलोचक महोदय प्रश्न करते हैं कि क्या प्यार का भी कोई महूरत होता है? आलोचना करने की धुन में वह यह भी भूल जाते हैं कि मुहूर्त वही नहीं होता जो पंडित लोग निकालते हैं, मुहूर्त का अर्थ क्षण भी होता है।

इस तरह की एकांगी और पूर्वाग्रह-ग्रसित आलोचना के चलते नीरज को एक गंभीर चिन्तक, विचारक कवि के तौर पर स्वीकार ही नहीं किया गया, जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है। नीरज ने मानवीय मूल्यों से युक्त सामाजिक सौहार्द और सामुदायिक चेतना की भी रचनाएँ लिखी हैं। उन्होंने कुत्सित राजनीति, हिंसा, साम्प्रदायिकता और युद्ध के ख़िलाफ़ भी अपनी आवाज़ बुलंद की है। दलगत राजनीति से मुक्त रहते हुए

उन्होंने मानवतावाद को अपनी कविता के केन्द्र में रखा। इस सन्दर्भ में उनके एक गीत की पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं–

'ज़िन्दगी की सूनी-सूनी राह है
भटकी-भटकी हर नज़र-निगाह है
निगाह को सँवार दो, राह को बुहार दो
आदमी हो तुम कि उठो, आदमी को प्यार दो, दुलार दो
रोते हुए आँसुओं की आरती उतार दो।'

नीरज ने गीतों के साथ-साथ दोहे, रुबाइयाँ और ग़ज़लें भी बेशुमार लिखी हैं। एक रुबाई में वह कहते हैं–

'दुःखते हुए ज़ख़्मों की हवा कौन करे
इस हाल में जीने की दुआ कौन करे
ख़ुद ही बीमार है जब हकीमाने वतन
अपने मरीज़ों की दवा कौन करे!'

एक अन्य रुबाई में अपने मन का दर्द वह इस तरह पिरोते हैं–

'काँपती लौ, ये सियाही, ये धुआँ, ये काजल
उम्र अपनी सब इन्हें गीत बनाने में कटी
कौन जाने मेरी आँखों की नमी का मतलब
ज़िन्दगी वेद थी, पर जिल्द बँधाने में कटी!'

देश की सामाजिक-राजनैतिक विसंगति पर वह कहते हैं–

'सही जगह पे ग़लत लोग यहाँ बैठे हैं
हमसे मत पूछिए कि कौन यहाँ बैठे हैं!'

एक गीत में वह कहते हैं–

'तन तो आज स्वतन्त्र हमारा,
लेकिन मन आज़ाद नहीं है!'

एक अन्य जगह उनका आक्रोश इस तरह फूटता है–

'तन की हवस मन को गुनहगार बना देती है
बाग़ के बाग़ को बीमार बना देती है
भूखे-नंगों को देशभक्ति सिखाने वालो!
भूख इंसान को ग़द्दार बना देती है।'

एक अन्य स्थान पर नीरज कहते हैं–

'गर क़लम न छीनी गई तो हिन्दुस्तान बदलकर छोड़ूँगा
इंसान है क्या, मैं दुनिया का भगवान बदलकर छोड़ूँगा।'

नीरज कई बार विद्रोही तेवर अपनाते हैं–

'तुमने नवयुग के विश्वासों को बहकाया
भूखे के मुँह तक से तुम कौर छीन लाए
ब्लैक-ट्रेड किया तुमने माँ की चोली तक से
आज़ादी तक धर चोर-बाज़ारों में आए
मानवता के क़ातिलो! मगर यह याद रहे
क़ातिल की ही तलवार उसे खा जाती है
हो सावधान! सम्भलो ओ ताज-तख़्त वालो!
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है।'

एक गीत में वह धरती-पुत्र किसानों का आह्वान करते हैं–

'दिल्ली की किल्ली हिल जाए, हलों की फाल तेज़ करो।'

नीरज को कुछ आलोचकों ने निराश मृत्युवादी कवि भी बताया है। निम्नांकित पंक्तियाँ तो कुछ और ही कहती लगती हैं–

'हैं काँप रही मन्दिर-मस्जिद की दीवारें
गीता-क़ुरान के अर्थ बदलते जाते हैं
ढहते जाते हैं दुर्ग-द्वार, मकबरे-महल
तख़्तों पर इस्पाती बादल मँडराते हैं
अँगड़ाई लेकर जाग रहा इंसान नया
ज़िन्दगी क़ब्र पर बैठी बीन बजाती है!'

नीरज ने ख़ुद को विद्रोही घोषित करते हुए कहा था–

'मैं विद्रोही हूँ, जग में विद्रोह कराने आया हूँ

क्रान्ति-क्रान्ति का सरल सुनहरा राग सुनाने आया हूँ!'

इस क्रम में वह 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या' की उक्ति को भी चुनौती दे डालते हैं–

'मैं कैसे कह दूँ धूल मगर इस धरती को

जब अब तक रोज़ मुझे यह गोद खिलाती है

मैं कैसे कह दूँ, मिथ्या है सम्पूर्ण सृष्टि

हर एक कली जब मुझे देख शरमाती है!'

नीरज एक गीत में युद्ध के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते हैं–

'मैं सोच रहा हूँ, अगर तीसरा युद्ध हुआ

इस नई सुबह की नई फ़सल का क्या होगा

मैं सोच रहा हूँ, गर ज़मीन पर उगा ख़ून

मासूम हलों की चहल-पहल का क्या होगा!'

नीरज उदासी के गीत गाते हैं, तो उदासी को झटक देने का भी आह्वान करते नज़र आते हैं। वह सन्देश देते हैं कि एक छोटा-सा हादसा ही सब कुछ नहीं होता। जीवन बहुत बड़ा होता है। मनुष्य को सदा आशान्वित ही रहना चाहिए–

'चुप-चुप अश्रु बहाने वालो!

मोती व्यर्थ लुटाने वालो!

एक फूल के मुरझाने से गुलशन नहीं मरा करता है!'

नीरज ने स्वयं को 'ज्वाला का ज्योति-काव्य' कहा है–

'मैं ज्वाला का ज्योति-काव्य, चिनगारी जिसकी भाषा

किसी निठुर की एक फूँक का हूँ बस खेल-तमाशा!'

'आदमी हूँ, आदमी से प्यार करता हूँ' का उद्घोष करने वाले नीरज का आदमीयत, मानवीय रिश्तों और आपसी सद्भाव में गहरा विश्वास रहा। वह आह्वान करते हैं–

'इसको भी अपनाता चल

उसको भी अपनाता चल

राही हैं सब एक राह के, सब पर प्यार लुटाता चल!'

इसी भाव को और आगे बढ़ाते हुए उन्होंने एक ग़ज़ल में इंसानियत का पाठ पढ़ाने वाला एक नया मज़हब चलाने की ज़रूरत पर बल दिया है–

'अब तो मज़हब कोई ऐसा भी चलाया जाए

जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए

जिसकी ख़ुशबू से महक जाए पड़ोसी का भी घर

फूल इस क़िस्म का हर सिम्त खिलाया जाए!'

हम जिस घृणा और विद्वेष के माहौल में जी रहे हैं, वहाँ इस तरह के ज़रूरी स्वर पर तवज्जो दी ही जानी चाहिए। नीरज इस स्वर को आजीवन बुलंद करते रहे।

इसी ग़ज़ल का एक और शे'र है, जो बेहद मर्मस्पर्शी है–

'मेरे दुःख-दर्द का तुझ पर हो असर कुछ ऐसा

मैं रहूँ भूखा, तो तुझसे भी न खाया जाए!'

4 जनवरी, 1925 को इटावा में जन्मे नीरज ने बचपन में बहुत दुःख झेले। जीविकोपार्जन के लिए अनथक संघर्ष किया।

कई जगह नौकरियाँ कीं। अंततः वह फ्री-लांसर हो गए। उन्होंने ख़ूब दौलत-शोहरत भी कमाई, इनाम-इकराम हासिल किए। पद्मभूषण से सम्मानित हुए और राजकीय सम्मान के साथ इस संसार से विदा भी हुए। यह सब उनकी लोकप्रियता का ही प्रमाण था।

हिन्दी साहित्य में यह विचित्र स्थिति है कि लोकप्रियता को स्तरीयता और श्रेष्ठता का विलोम मान लिया जाता है। लोकप्रिय लेखिका शिवानी से लेकर गुलशन नंदा तक इस तरह के सोच का शिकार रहे हैं। हिन्दी लेखकों के बीच यह मुद्दा कई बार चर्चा का विषय बन चुका है, लेकिन आज तक किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सका।

बहरहाल कवि नीरज का सही, निष्पक्ष और पूर्वाग्रहमुक्त मूल्यांकन किया जाना अभी शेष है। आने वाला समय ही तय करेगा कि कविता के इतिहास में नीरज का क्या स्थान है। समय को यह भी तय करना है कि कविता की वाचिक परम्परा कितने समय तक जीवित रह सकती है!

ऐसा नहीं है कि नीरज का काव्य साहित्य केवल वाचिक परम्परा तक सीमित रह गया हो। 'कारवाँ गुज़र गया', 'नीरज की पाती' समेत उनके अनेक कविता-संग्रह प्रकाशित हुए। ये सभी काव्य-संग्रह बेस्टसेलर की श्रेणी में आते हैं पर सच यह भी है कि वे सब कविता के गंभीर अध्येताओं को विशेष आकर्षित नहीं कर पाए।

नीरज जैसा क़लम का धनी रचनाकार इस सबसे विचलित कैसे हो सकता था! संस्कृत के महाकवि भवभूति के 'कालो निरवधि विपुलाम् च पृथिवी' की तर्ज़ पर उन्हें अपनी क़लम और काव्य-प्रतिभा पर पूरा भरोसा रहा। इस भरोसे के पीछे थी उनकी अद्भुत और अद्वितीय सम्प्रेषण क्षमता, जो उनकी भाषा सामर्थ्य के बूते शक्ति अर्जित करती थी। वह सरल और सामान्य जन के लिए बोधगम्य भाषा के पक्षधर रहे और अपनी रचनाओं में उसी का प्रयोग करते रहे। कठिन और पेचीदा भावों को सरलतम शब्दों में व्यक्त कर देने का हुनर उन्हें हासिल था। यह भाषा उन्होंने हिन्दी-संस्कृत की प्रांजल मधुरता तथा उर्दू-फ़ारसी की सलीस लताफ़त के प्रवाहपूर्ण मिश्रण से तैयार की थी, जो आम बोलचाल की भाषा के बेहद क़रीब थी। इसी के बल पर वह आम लोगों तक अपनी बात आसानी से पहुँचा देते थे। यही उनका जादुई करिश्मा था। यही उनकी लोक-स्वीकार्यता थी। उनकी लोकप्रियता को इस लोक-स्वीकार्यता के सन्दर्भ में देखने से स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

हिन्दी के पाठकों की लगातार घटती संख्या को देखते हुए, पाठकों और श्रोताओं के बीच अपनी प्रासंगिकता बनाए रखना एक बहुत बड़ी चुनौती बन गई है। यह क्या कम बड़ी बात है कि नीरज ने इसके बावजूद अपनी लोक-स्वीकार्यता को निरंतर बनाए रखा! क्या हिन्दी जगत के लिए यह कम सुखद, गर्व-गौरवपूर्ण अचरज की बात है कि अज्ञेय के बाद नीरज एकमात्र ऐसे हिन्दी लेखक हैं, जिनके निधन के समाचार और श्रद्धांजलियों को अंग्रेज़ी के समाचारपत्रों में प्रमुख और व्यापक स्थान दिया गया!

निष्पक्ष साहित्यिक मूल्यांकन भले ही न हुआ हो, पर नीरज का क़द्दावर व्यक्तित्व इसका मुखापेक्षी भी नहीं है। कुछ भी हो, नीरज के महत्व को नकार पाना भी इतना आसान नहीं होगा। ❑

संस्मरण

तुम्हें लग जाएँगी सदियाँ हमें भुलाने में

लो, छुट्टी की घंटी बज गई। रोज़ की तरह गुरुजी के साथ घर लौटने में आज कोई दिलचस्पी नहीं रही। आज उनको छोड़कर अकेले घर (किराए का घर) की ओर चल दिया। वहाँ पहुँचकर अपने कमरे का दरवाज़ा खोल ही रहा था कि पीछे से गुरुदेव आ गए। भारी मन से उन्हें कुर्सी दी। बेमतलब, दो-तीन बार कमरे से बरामदे और बरामदे से आँगन की ओर आया-गया, चेहरा लुकाने को कुछ न मिला।

सतीश नूतन
ई-मेल : nutansatish@gmail.com

रेडियो पर फ़िल्मी गानों का आनंद लेते हुए गोपाल दास नीरज का नाम कई बार सुन चुका था। ब्लैक एण्ड ह्वाइट टी.वी. के ज़माने में लालक़िले के प्राचीर पर आसन जमाए पहली बार उनकी छवि देखी। माइक्रोफ़ोन के सामने बैठकर अपने चिरपरिचित अंदाज़ में उन्हें गाते हुए सुना–

'गंगा-जमना के पानी में
घुली-मिली ज़िन्दगी हमारी
मासूमों के गरम लहू से पर दामन आज़ाद नहीं है
तन तो आज स्वतन्त्र हमारा लेकिन मन आज़ाद नहीं है।'

15 अगस्त, 1947 को ही ग़ुलामी की बेड़ियों से मुक्त होने के बावजूद हमारे स्वच्छंद मन पर किस ज़ालिम का ज़ंजीर बँधा है? उनका गीत सुनते हुए मन-मस्तिष्क में यही सवाल कौंध रहा था। आगत अतिथियों, कवियों और श्रोताओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के पश्चात कवि-सम्मेलन समाप्ति की घोषणा हो गई, मैं टेलीविज़न बंद कर बिस्तर पर पसर गया। नींद आई नहीं। कानों में देर तक गूँजते रहे नीरज के गीत के बोल।

आठवीं कक्षा में प्रवेश के बाद पाठ्यपुस्तक में जिन कवियों को पढ़ना अनिवार्य हुआ, उनमें नीरज भी शामिल थे। उनकी कविता 'रोने वाला ही गाता है' का यह अंश–

'प्राणों की वर्तिका बनाकर
ओढ़ तिमिर की काली चादर
जलने वाला दीपक ही तो
जग का तिमिर मिटा पाता है
रोने वाला ही गाता है।'

उन दिनों भी देर तक रोके रखता था। आज भी याद है कि 'वर्तिका' और 'तिमिर' जैसे शब्दों के अर्थ इसी कविता की वजह से शब्दकोश में ढूँढे और उसके प्रचलित अर्थ जाने। वार्षिक परीक्षा में इस कविता का भावार्थ पूछा गया था। अपनी समझ-बूझ के अनुसार उत्तर लिखने में क़तई कोताही नहीं की परन्तु जब मूल्यांकित उत्तर-पुस्तिका सामने पाई और भावार्थ वाले उत्तर के सामने शून्य अंक देखा तो मन एकदम से झल्ला गया। गुरुदेव शिवकुमार झा ने कहा, "अगर कोई छात्र प्राप्त अंकों से संतुष्ट न हो तो अपने ऐतराज़ के साथ उत्तर पुस्तिका के साथ सामने आए।" उनके इस कथन से बल मिला। अब क्या, गुरुजी को बहला-फुसला कर शून्य की जगह एकाध अंक बढ़वा ही लूँगा। बस, इसी एकाध अंक से राजकिशोर गुप्ता (मेरा सहपाठी, अब इस दुनिया में नहीं है।) हिन्दी में दो नम्बर पर चला जाएगा। किसी क़ीमत पर उसे इस विषय में अव्वल नहीं होने देना है। यही सब सोचते, भरोसे के साथ गुरुजी के सामने अपना ऐतराज़ रख दिया। गुरुदेव मुस्कुराए, उत्तर-पुस्तिका बाबूजी से दिखवा लाने को कहा। दौड़कर पहुँच गया शिक्षक प्रकोष्ठ की उस बड़ी-सी मेज़ के पास जहाँ पर बाबूजी अपने सहकर्मियों के साथ थे। बाबूजी ने क्लास छोड़कर यहाँ आने की वजह पूछी। मैंने उनके समक्ष अपने ऐतराज़ को दोहरा दिया। सरसरी निगाह से वे मेरे उत्तर पढ़ गए फिर जेब से काली स्याही वाली क़लम निकाली और जिस स्थान पर गुरुजी ने लाल स्याही से शून्य बैठाया था, ठीक उसके बग़ल में एक और शून्य बिठाकर उत्तर पुस्तिका मेरे हाथ में थमा दी। ऐसा लगा कि किसी ने चेहरे पर कालिख पोत दी हो। मुँह लटकाए अपने वर्ग कक्ष में लौट गया और गुरुजी को उत्तर पुस्तिका थमाकर अपनी बेंच पर बैठ गया। वर्ग में हिन्दी का अव्वल बनने का ख़्वाब बालू की भीत की तरह धराशायी हो गया। कल तक नायक जैसे दिखने वाले गुरुजी आज खलनायक दिखने लगे। कभी-कभार तिरछी नज़र से गुरुजी को निहार लेता था। जब-जब उन्हें निहारता, तब-तब मेरे ही अंदाज़ में वे भी मुझे निहारते दिखते।

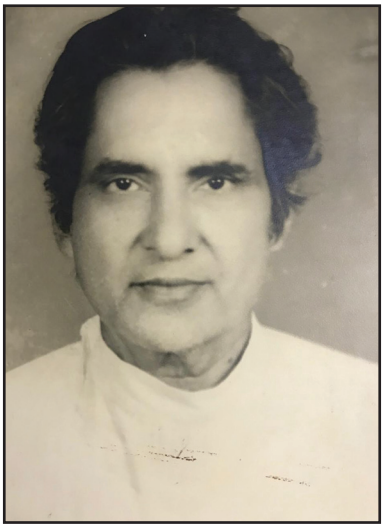
गोपाल दास 'नीरज'

लो, छुट्टी की घंटी बज गई। रोज़ की तरह गुरुजी के साथ घर लौटने में आज कोई दिलचस्पी नहीं रही। आज उनको छोड़कर अकेले ही घर की ओर चल दिया। वहाँ पहुँचकर अपने कमरे का दरवाज़ा खोल ही रहा था कि पीछे से गुरुदेव आ गए। भारी

मन से उन्हें कुर्सी दी। बेमतलब, दो-तीन बार कमरे से बरामदे और बरामदे से आँगन की ओर आया-गया, चेहरा लुकाने को कुछ न मिला।

"सर, रायजी की दुकान से चाय लेकर आता हूँ।"

"रहने दीजिए। मुँह में पान है। तीस पैसे बरबाद हो जाएँगे यूँ ही। बैठिए।" कोई चारा न चला। स्टूल निकालकर उनके सामने बैठ गया। गुरुजी शुरू हो गए, "बताइए, जिस कवि के साथ आपके बाबूजी कविता का मंच साझा करते हैं, जिनकी पत्रिका 'लय' में उनके गीत छपे, उस कवि का नाम भी नहीं जानते हैं, आप! आपको पता है? इसी शहर में नूतनजी (हरिहर प्रसाद चौधरी 'नूतन', मेरे पिता) का संगी-साथी होने के कारण मेरे जैसे कई शिक्षकों का वैसे कवि-लेखकों से मिलना-जुलना हो गया जिनकी रचना हम लोग पाठ्य-पुस्तकों में पढ़ाते हैं। 'जीवन का झरना' कविता के कवि आरसी प्रसाद सिंह से यहीं मिला था; इसी घर में। उत्तर में सिर्फ़ इतना लिख देते आप कि इस कविता के कवि गोपाल दास 'नीरज' हैं तो एक क्या, दो नम्बर दे ही देता मैं! कहिए तो ऐसे ही, कुछ अंक बैठा दूँ अभी लेकिन इससे सिर्फ़ और सिर्फ़ तात्कालिक ख़ुशी मिलेगी आपको। अच्छा, छोड़िए कविता-फविता की बात। ई गीत सुने हैं कभी? 'ए भाई ज़रा देख के चलो...'

"जी, 'मेरा नाम जोकर' फ़िल्म में राज कपूर गा रहे थे यह गीत।"

"इस गीत के रचयिता नीरज ही हैं न, बुरबक..! उनके गीतों को पढ़िए। उन्हें रेडियो पर गाते हुए सुनना और आनंद देगा।" इतना कह मेरी पीठ ठोककर अपने घर की ओर चल दिए गुरुजी।

हाजीपुर की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था किरण मंडल का इतिहास अत्यंत गौरवशाली है। इसके गठन के पीछे की कथा में उस हस्तलिखित पत्रिका 'किरण' का योगदान व्यापक है जिसे कला गुरु नंदलाल बसु के शिष्य जगन्नाथ प्रसाद निकालते थे। 1943 से 1953 के बीच इसके कई महत्वपूर्ण अंक शहर के श्रीकृष्ण पुस्तकालय की मेज़ पर पाठकों के लिए उपलब्ध रहे। कालांतर में महावीर प्रसाद शर्मा 'विप्लव' का नाम भी इस पत्रिका के सम्पादक के रूप में जुड़ा। इसी पत्रिका के नाम में 'मंडल' शब्द जोड़कर 1948 में 'किरण मंडल' नाम से एक संस्था का गठन हुआ। सुप्रसिद्ध गायिका हीराबाई बड़ोदकर जब मंडल की ओर से आयोजित एक सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेने हाजीपुर आईं तो इतनी प्रभावित हुईं कि इस संस्था की सदस्य बन गईं।

मौर्यकालीन पाटलिपुत्र के राष्ट्रीय पर्व 'कौमुदी महोत्सव' और लिच्छवी गणतन्त्र के राष्ट्रीय पर्व 'मधुपर्व' को साहित्योत्सव का रूप देकर 'किरण मण्डल' संस्था आज भी कवि-सम्मेलन आयोजित करती है। आश्विन और चैत पूर्णिमा की रजत राका में आयोजित इन दोनों पर्वों के आयोजन की सुदीर्घ परम्परा आज भी जारी है।

बाबूजी के नाम से इसी किरण मंडल का कार्ड आया है। 45वें कौमुदी महोत्सव में अलीगढ़ से नीरज आएँगे। वैशाली कला मंच पर चढ़कर शहर के श्रोताओं को अपने गीतों से आप्यायित करेंगे, यही सब छपा है इसमें। पढ़कर मन में लबालब हर्ष भर गया।

कार्ड के साथ काव्य मंच के इस महँगे कवि के आगमन के क़िस्से भी घर-घर घूम रहे हैं– एक स्वतन्त्रता सेनानी अलीगढ़ जाएँगे। उन्हीं के अटेंडेंट बन फ़र्स्ट क्लास एसी में हाजीपुर आएँगे नीरज। एक अधिकारी जो कवि भी हैं, उन्हें मानदेय स्वरूप मोटी रक़म देंगे। इसी कार्यक्रम में उनके काव्य-संग्रह का लोकार्पण होगा। दामोदर बाबू के घर में ही ठहरेंगे नीरज, उन्हीं के डाइनिंग टेबल पर होगा उनके खाने-पीने का इंतज़ाम...

तब छोटे शहरों से लेकर सुदूर गाँवों तक टेलीफ़ोन के खम्भे खड़े हो रहे थे। इन खम्भों से निकलकर जिन घरों में जुड़ते थे इसके तार, उस घर का रुतबा एकाएक बड़ा हो जा रहा था। टेलीफ़ोन मालिक दिल खोलकर अपने पड़ोसियों के बीच अपना टेलीफ़ोन नम्बर बाँटते थे। हर घंटी के बाद किसके नाम कहाँ से आया, कौन-सा संदेश, इसका हिसाब रखते थे। सुबह-सवेरे एक-एक संदेश पहुँचाने साइकिल चढ़कर घर-घर जाते थे। कह आते थे, अमुक समय फिर आएगा तुम्हारा फ़ोन, हाज़िर रहियो।

मैं जिस टेलीफ़ोन का चोग़ा उठा 'हेलो-हेलो' करता था, उसके मालिक पंकज कुमार शर्मा थे। मित्र होने के नाते हमारे हितैषियों की हरेक ख़बर लेकर मेरे घर स्वयं आ जाते थे वे। आज फिर आए हैं, पटना से प्रकाशित हिन्दी दैनिक 'जनशक्ति' के फ़ीचर प्रभारी पुरुषोत्तमजी का संदेशा लाए हैं, "आपसे बहुत ज़रूरी बात करनी है उन्हें। साथ चलिए। उनसे बात करिए।" पहुँचकर उनका नम्बर डायल किया। वे कहने लगे, "तुम्हारे शहर में नीरज आने वाले हैं। उनका इंटरव्यू करो। रविवार के दिन पूरा एक पेज तुम्हारे लिए सुरक्षित कर देता हूँ। प्रबंधन से कहकर कुछ पैसे भी दिलवा दूँगा।" अति उत्साह में उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार तो कर लिया परन्तु एक बड़े गीतकार से बातचीत के लिए जिस स्तर की प्रश्नावली और बोलने-बतियाने की तहज़ीब चाहिए, वह मेरे पास नहीं थी। वाक़ई बहुत कठिन लग रहा था यह काम। इस बाबत जब अपने फ़ोटोग्राफ़र मित्र गोपाल शर्मा से बात की तो वह ठठाकर हँस पड़ा। बोला, "तुम नाहक़ परेशान हो रहे हो, अख़बार में नामवर सिंह की तरह थोड़े लिखा जाता है। उनकी तरह लिखने से अख़बार का भट्ठा बैठ जाएगा। जगज़ाहिर है कि नीरज सुकंठ कवि हैं। देश-विदेश में उनके लाखों प्रशंसक हैं। सिनेमा के लिए गीत लिखते हैं। छंदमुक्त कविता उन्हें रास नहीं आती... उनसे बतियाने को इतना काफ़ी है। इन्हीं प्रसंगों को केन्द्र में रखकर उनसे सवाल करेंगे। ऊ जो कुछ कहेंगे उसी को मथ कर कुछ और प्रश्न निकाल लेंगे और दुनिया-जहान पर बतियाते हुए विभिन्न मुद्राओं में उनकी तस्वीरें उतारेंगे। बस इसी फ़ॉर्मूले पर काम कर लेने मात्र से 'जनशक्ति' का पूरा पन्ना भर जाएगा।"

गोपाल की बातें काम की लगीं, बावजूद इसके अपनी समझ के अनुरूप प्रश्नावली तैयार करने में दिन-रात जुटा रहा।

तब देर तक सोने की आदत थी। मेरी इस आदत से आजिज़ होकर बाबूजी महात्मा गाँधी का उपदेश सुनाते थे, "Early to bed and early to rise, makes a man healthy, wealthy and wise." दो-चार दिनों तक इस उपदेश पर अमल कर लेता, पर पाँचवें-छठे दिन आलस्य पुनः

अपने आग़ोश में ले लेता था। ऐसी ही मीठी नींद को तोड़ते हुए गोपाल ने पुकारा था उस सुबह, "सुतले रहो। नीरज हाजीपुर पहुँच गए। स्वतन्त्रता सेनानीजी के साथ स्टेशन पर उन्हें देखा है अभी। उनका अटैची रिक्शा पर लद रहा था।"

आँखों में पानी झोंका। नित्य क्रिया से निवृत्त होकर झटपट पी ली चाय और साइकिल के कैरियर में डायरी दबाकर चल पड़ा दामोदर बाबू के आवास की ओर।

डॉक्टर साहब के बैठक ख़ाने में एक किसान टाइप आदमी सोफ़े पर अधलेटा था। गोपाल ने बताया कि ई मथुरा प्रसाद नवीन हैं। मगही भाषा के कबीर कहे जाने वाले इस कवि का नाम सुनते ही कानों में उनकी बहुचर्चित कविता 'कहिया तक सरकार चलत' की कुछ पंक्तियाँ झाल की तरह बजने लगीं–

'अजी मिसिर जी पतरा देखऽ
कहिया तक सरकार चलत
महज़ एक कुर्सी के ख़ातिर
कहिया तक तकरार चलत।'

उन्हीं से पूछा, "नीरजजी आ गए?"

"हाँ। स्नान करने गए हैं अभी।"

बमुश्किल दस मिनट भी नहीं बीते होंगे कि नीरज चारख़ाने प्रिंट की लुँगी और बनियान पहने, सिर में तेल मालिश करते कमरे में आ गए। पीछे से डॉक्टर साहब का भी पदार्पण हुआ। नीरजजी को मेरा परिचय उन्होंने ही दिया, "नूतनजी का पुत्र है- सतीश नूतन।"

"एक बंडल बीड़ी ले आ बेटा, बात करते हैं फिर।"

डॉक्टर साहब ने कुछ सिक्के दिए जिसे जेब में रखकर मैं बीड़ी ख़रीदने चल पड़ा। मोदनीमल मोहल्ले के ऊबड़-खाबड़ रास्ते को लाँघते गुदरी बाज़ार में उस दुकानदार के पास पहुँचा जो अपने सधे हाथों से तेंदु पत्ते में तम्बाकू लपेटकर बीड़ी बाँध रहा था। उससे अपने प्रिय गीतकार के लिए इस हिदायत के साथ एक मुट्ठी बीड़ी माँगी, "अच्छी क्वालिटी की देना, सिनेमा के एक गीतकार को पिलानी है।" चश्मे के ऊपर से मेरी आँखों में आँखें डाल उसने मुझे मुट्ठीभर बीड़ी थमा दी। आगे राशन की दुकान से दियासलाई भी ले ली और क़दम ताल करते सीधे उस कमरे में पहुँच गया जिसमें नीरज आराम फ़रमा रहे थे। बीड़ी सुलगाकर कविवर ख़ूब प्रसन्न हुए। सारस्वत प्रसाद स्वरूप मेरी डायरी के एक पन्ने पर दर्ज कर दिया–

'बेटा सतीश नूतन
अब तो मज़हब भी कोई ऐसा चलाया जाए
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए।'

नीचे हस्ताक्षर बनाकर मेरी क़लम मेरी जेब में खोंसते हुए कहा, "अब जो पूछना है पूछ।"

जिस डायरी में आधी-अधूरी प्रश्नावली दर्ज कर रखी थी, उसके पन्ने खोले और बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया। गीत-नवगीत, समय-समाज, धर्म और राजनीति से लेकर फ़िल्मी गीतों के बदले स्वरूप पर उनकी बेबाक राय छन-छनकर आती रही।

फ़िल्मी गीतों के गिरते स्तर पर उन्होंने सारा दोष समाज पर मढ़ दिया। कहा, हम लोग सस्तेपन की ओर भाग रहे हैं। कला विकृत हो गई है। एक गीतकार के पास हीरे-मोती कंकड़-पत्थर होते ही हैं। अगर कोई कंकड़-पत्थर ख़रीद कर उसे अपनी फ़िल्मों

में जड़ दे तो इसमें गीतकार का क्या दोष? यात्रा की थकान का ज़िक्र करते हुए उन्होंने इस बातचीत को विराम दे दिया।

कविगण वैशाली कला मंच पर मसनद लगाकर बैठ चुके थे। उद्घाटन, स्वागत भाषण और पुस्तक लोकार्पण की औपचारिकताओं के बाद मंच संचालक सत्यनारायण स्थानीय कवियों को खपा रहे थे। इधर श्रोता-समूह नीरज के गीतों के लिए अधीर हो रहा था। श्रोताओं की इस अधीरता को देखते हुए संचालक महोदय ने माइक्रोफ़ोन पर नीरजजी को बुला लेना ही मुनासिब समझा। नीरज आए और काव्यमंच के पक्ष में एक छोटा-सा वक्तव्य देना शुरू कर दिया। उनके वक्तव्य का लब्बोलुआब यह था कि कविता का मंच उस दर्पण के समान है जिसके सामने जो कवि जैसा रहता है, ठीक वैसा ही दिखता है। इस वक्तव्य के बाद उनके कंठ से गीत का सूफ़ियाना स्वर फूटा-

'अब के सावन में ये शरारत मेरे साथ हुई,
मेरा घर छोड़ के कुल शहर में बरसात हुई
आप मत पूछिए क्या हम पे सफ़र में गुज़री?
था लुटेरों का जहाँ गाँव वहीं रात हुई
ज़िन्दगी भर तो हुई गुफ़्तगू ग़ैरों से मगर,
आज तक हमसे न हमारी मुलाक़ात हुई।'

उनकी इस पहली प्रस्तुति से ही श्रोता दीर्घा में पिन ड्रॉप साइलेंस का वातावरण बन गया। खुसर-फुसर छोड़कर लोग एकदम एकाग्रचित्त हो गए। अपने गीतों के माध्यम से अपने समय को स्वर दे रहे थे नीरज कि इसी बीच किशोर वय का एक लड़का दौर कर मंच पर चढ़ गया और सत्यनारायणजी के हाथ में एक चिट थमाकर नीचे उतर आया। उस चिट को नीरज के हाथ में थमा दिया गया। "अभी रात है इसलिए शोख़ियों की जगह चाँदनी लगाकर पढ़ रहा हूँ। सुनो प्यारे।" यह कहते हुए नीरज 'शोख़ियों में घोला जाए फूलों का शबाब...' सुना गए। जब इस गीत को सुना रहे थे वे, तभी राजेन्द्र चौक की तरफ़ से एक और भीड़ कचहरी मैदान में उमड़ आई। पता चला कि सब चौक पर आर्केस्ट्रा का आनंद ले रहे थे जहाँ कुछ लोगों ने प्रचार कर दिया कि सिनेमा का एक बड़ा गीतकार कचहरी मैदान में गा रहा है। इस प्रचार से लोगों का हुजूम वैशाली कला मंच के सामने आ खड़ा हुआ। आर्केस्ट्रा का शोर एकदम से थम गया। अपने ढोल-ताशे को समेटकर गाने-बजाने वाले कलाकार और अपने लटके-झटके से लोगों को सम्मोहित करने वाली नृत्यांगनाएँ स्टेज से उतर कर शहर की गलियों में खो गईं। कुर्सियाँ कम पड़ गईं, पर बावजूद इसके नीरज के गले के आरोह-अवरोह में घंटा-डेढ़ घंटा मदमस्त हो झूमते रहे लोग।

चाँदनी रात में अपने गीतों की गंध मिलाकर सुबह अलीगढ़ जाने वाली रेलगाड़ी में बैठ गए नीरज। उन्हें रेलवे स्टेशन तक छोड़ने मैं भी गया था। गाड़ी खुलने के पूर्व उन्होंने कहा कि अब पत्र के माध्यम से जुड़े रहेंगे हम दोनों। उनके नाम नियमित पोस्ट कार्ड लिखता। मेरे पत्रों का उत्तर भी वे उदारतापूर्वक देते थे। यह सिलसिला 1994-95 तक जारी रहा।

किताबें, साहित्यिक पत्रिकाएँ और अख़बारों की कतरनें संजोने का शौक हाई

स्कूल के दौरान ही परवान चढ़ चुका था। अली सरदार जाफ़री सम्पादित 'दीवाने ग़ालिब' की सैकड़ों प्रतियाँ सुलभ इंटरनेशनल सोशल सर्विसेज़, चेम्बुर (मुम्बई) के गोदाम में पड़ी हुई थीं। महानगर के शौचालयों की सफ़ाई हेतु फ़िनाइल, एसिड, झाड़ू आदि के वितरण केन्द्र पर धूल फाँकती इन किताबों में से एक मुझे मिल जाए, इस बाबत स्टोर इंचार्ज से बहुत आरज़ू-मिन्नत की, पर उसने 'न' कह दिया। फिर इस पुस्तक को पाने की ज़िद में मैंने वह किया जिसके लिए एक ही शब्द है- 'चोरी' !

एक सुबह जलेबी खाने की इच्छा हुई। रामदास भाई ने जिस पन्ने पर रसभरी क़रारी जलेबियों को तौला, उस पर कठपुतली नाच के कुछ दृश्य छपे थे। "दो किलो अख़बार दे जाता हूँ, यह किताब दे दीजिए मुझे।" "अरे अइसही (ऐसे ही) ले जा", कहते हुए उन्होंने जिस किताब को मेरे हवाले कर दिया, उसका नाम था 'गेहरो फूल गुलाब रो'। लोक-शिल्पी पद्मश्री देवीलाल सामर के षष्ठी-प्रविष्टी समारोह के अवसर पर प्रकाशित यह किताब दरअसल सामरजी का अभिनंदन ग्रंथ है जिसका सम्पादन महेन्द्र भानावत ने किया है। इस तरह का सम्पादन आज कम देखने को मिलता है।

लघु पत्रिकाओं का भी अच्छा-ख़ासा कलेक्शन था मेरे पास। दिवाली की सफ़ाई में हर साल अपने पास की किताबों और पत्रिकाओं को दरी बिछाकर धूप दिखाता था और सूर्यास्त होने के पूर्व सबको झाड़-पोंछकर करीने से रैक पर सजा देता था। वर्ष 2005 में सुखाने-बराने की इसी प्रक्रिया में लगभग 40 पत्रिकाएँ और 10-12 किताबें चोरी चली गईं। मोहल्ले के बाल जासूसों ने बताया कि कुछ बच्चे उन पत्रिकाओं को कबाड़ी की दुकान में बेच आए। इसके एवज़ में सबको कुछ सिक्के और सोनपापड़ी मिली। बहुत मशक्कत के बाद कबाड़ी वाले से इंदौर से प्रकाशित होने वाली लघु पत्रिका 'आरती' और 'गेहरो फूल गुलाब रो' की प्रति ही बरामद कर सका। अन्य किताबें और पत्रिकाओं के साथ त्रैमासिक 'लय' के वे सारे अंक नहीं मिले जिसके मार्फ़त गीत आंदोलन को धार देने वाले गीतकारों के लिए नया मंच बना चुके थे नीरज। 1994-95 के बीच 'गीतकार' नामक पत्रिका के प्रधान सम्पादक के रूप में भी नीरज का नाम देखा गया लेकिन इस पत्रिका का स्तर 'लय' के जैसा बिल्कुल नहीं था। एक पत्र में उन्होंने स्वीकार भी किया था, "'गीतकार' में सिर्फ़ मेरा नाम छपता है। रचनाएँ साथी छतारवी ही देखते हैं।"

यों तो नीरज के खाते में दर्जनों संग्रह के नाम दर्ज हैं परन्तु 'कारवाँ गुज़र गया' और 'नीरज की पाती' के अलावा किसी भी-संग्रह के गीतों को मैंने नहीं पढ़ा। एक तरह से उनका स्वर ही मेरे मस्तिष्क पर हावी रहा और उनके गीत-ग़ज़ल, दोहे और रुबाइयों के शब्द हमसे छूट गए।

हिन्दी आलोचना जगत नीरज के कविकर्म के साथ न्याय कर पाया या नहीं, कह नहीं सकता लेकिन हज़ार बदनामियों के बीच जितनी लोकप्रियता उन्होंने हासिल कर ली, वह दूसरों के लिए दुर्लभ है। उन्हीं के शब्दों में–

'इतने बदनाम हुए हम तो इस ज़माने में
तुम्हें लग जाएँगी सदियाँ हमें भुलाने में।' ❑

संस्मरण

पुत्र के नज़रिए से

नीरजजी काव्य के उच्च शिखर पर विद्यमान थे परन्तु उनमें अहंकार लेशमात्र भी नहीं था। उनके अंदर बच्चों जैसी सरलता, निश्छलता थी तथा वैसी ही हठधर्मी भी। दूसरों के लिए अपने शरीर को कष्ट देने पर भी उनको कोई मलाल नहीं था।

हिन्दी साहित्य और मंचीय कवियों में अनेकों चमकते सितारे हैं, उनमें सबसे अग्रिम पंक्ति में बैठने वालों में नीरजजी का नाम अवश्य लिया जाएगा। उनका ये सफ़र 18 साल की आयु से शुरू होकर अनवरत उनकी 93 साल की उम्र में मृत्यु तक जारी रहा। शायद नीरजजी विश्व के पहले व्यक्ति होंगे जिन्होंने 75 साल लगातार मंच पर कार्यक्रम दिए हों। ये लम्बा सफ़र जनमानस में उनकी अपार लोकप्रियता एवं उनके कृतित्व की सामयिकता का प्रमाण है। नीरजजी ने 5 जनवरी, 1925 को एक मध्यम वर्गीय कायस्थ परिवार के पुरावली नामक ग्राम में (जो इटावा के पास है) जन्म लिया और विकट परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए पूरे विश्व में अपनी अलग छाप छोड़ी। नीरजजी ने अपने सुमधुर कंठ और अलौकिक काव्य शैली से काव्य जगत में अपनी एक अलग पहचान बनाई है, उनकी कविताएँ हृदय को अंदर तक आंदोलित करती हैं और बार-बार सुनने के बाद उन शब्दों में छिपे गूढ़ अर्थ और दर्शन समझ में आते हैं। नीरजजी ने हरेक विषय चाहे वो श्रृंगार हो, विरह हो, वीर रस हो या अध्यात्म, हरेक पर लिखा। बाद में उनकी ज़्यादातर कविताओं में दर्शन की प्रचुरता थी। नीरजजी ने काव्य की हर विधा गीत, गीतिका, मुक्तक, रुबाई, दोहे और हाइकू लिखे हैं जिससे जन मानस के अंतर्मन तक उनकी गहरी पैठ थी। उन्होंने फ़िल्मों में भी गीत लिखे। उनके लिखे

मिलन प्रभात गुंजन
ई-मेल : milanprabhat1@gmail.com

गुरुग्राम में परिवार के साथ

ज़्यादातर गीत बहुत मशहूर हुए और लोगों के प्यार के साथ-साथ फ़िल्मफ़ेयर पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। हिन्दी के कुछ शब्दों जैसे 'मधुर', 'मदिर', 'पाती', 'गीताँजलि' इत्यादि का पहली बार इस्तेमाल किया गया जो लोगों की ज़ुबान पर चढ़ गए। नीरजजी को अनेकानेक पुरस्कारों पद्मश्री, पद्मभूषण, साहित्य शिरोमणि इत्यादि से नवाज़ा गया।

नीरजजी काव्य के उच्च शिखर पर विद्यमान थे परन्तु उनमें अहंकार लेशमात्र भी नहीं था। उनके अंदर बच्चों जैसी सरलता, निश्छलता थी तथा वैसी ही हठधर्मी भी। दूसरों के लिए अपने शरीर को कष्ट देने पर भी उनको कोई मलाल नहीं था।

उत्तर प्रदेश सरकार ने साहित्यकारों को दी जाने वाली पेंशन को बंद कर दिया था। बहुत-से नवोदित साहित्यकार जिनको पेंशन मिलनी बंद हो गई थी वो नीरजजी के पास आकर उनको लेकर मुख्यमन्त्री को ज्ञापन देने के लिए अपने साथ ले जाने के लिए आते थे कि आप हमारे साथ चलिएगा तो हमारी बात अच्छे से सुनी जाएगी। पापा की तबियत ठीक नहीं होती थी पर वे मेरे

मना करने पर भी जाने के लिए तैयार हो जाते थे। कहते थे कि अगर मेरे जाने से किसी का भला हो जाता है तो कोई बात नहीं, मैं जाऊँगा। ऐसे ही एक बार लौटने पर तबियत ख़राब हो गई। मैंने पूछा कि तबियत ठीक नहीं है? तो कहा 'हाँ' थोड़ा बुख़ार है। मैंने कहा भी कि अब आप ज़्यादा सफ़र न किया करें क्योंकि आपका शरीर अब इतना कष्ट नहीं झेल पाता है तो हँसकर बात को टाल गए। दूसरे दिन कहने लगे कि मेरे कान में दर्द हो रहा है और देखो पानी भी निकल रहा है। मैं उनको लेकर डॉक्टर के पास गया। डॉक्टर ने देखा और कहा, "नीरजजी, आप कान में क्या डालते रहते हैं?" क्योंकि कान से बहुत सारी रूई बाहर निकली थी जो उनके बार-बार कान में बड डालने की वजह से अंदर रह गई थी जिसकी वजह से दर्द हो रहा था। डॉक्टर ने उनको पाँच दिन की दवा लिख दी। मुझे मालूम था कि पापा अंग्रेज़ी दावा ज़्यादा खाएँगे नहीं, तो मैंने सिर्फ़ तीन दिन की दवा ली। दूसरे दिन ही जब उनको थोड़ा आराम मिला तो पापा ने दवा लेने में आनाकानी करना शुरू कर दिया कि मुझे क़ब्ज़ हो गया है और अब मैं दवा नहीं खाऊँगा। पर खिलाना ज़रूरी था तो उनको बच्चों की तरह मिठाई में रखकर किसी तरीक़े से तीन दिन दवा खिलाई।

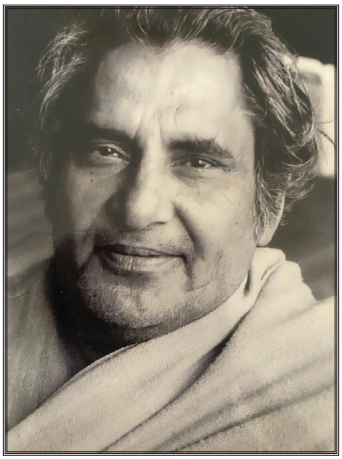

गोपाल दास नीरज

पापा को मिठाई और आम के दिनों में आम खाने का बहुत शौक था। खाना खाने के बाद उनको मिठाई ज़रूर चाहिए होती थी और अगर आम का मौसम हो तो आम भी। तबियत में सुधार होने के एक-दो दिन बाद ही कहने लगे कि आम लेना है, तो मैंने कहा कि बताएँ कौन-सा लाना है? मैं लेकर आ जाता हूँ। कहने लगे कि तुम्हें ठीक पहचान नहीं है। मैं चलूँगा। मैंने कहा ठीक है। ड्राइवर को बुलाया और हम लोग आम लेने चले गए। पापा तो कार में बैठे रहे, मैंने उनको लाकर आम दिखाए, पापा ने आम को सूँघा फिर बताया कि ये वाले ले लो। वहाँ पर कलमी आम भी रखे हुए थे। कहने लगे कि उसको भी लाओ। मैं लेकर आया। कहने लगे, चखकर देखना है। मैंने कहा कि आम साफ़ नहीं है और गर्म भी है। न जाने कितनी मिट्टी होगी! पर अड़ गए, जैसे छोटे बच्चों को कोई खिलौना मिलने पर वह वहीं दुकान पर उससे खेलना शुरू कर देता है, घर पहुँचने का इंतज़ार नहीं करता है, पापा भी अड़ गए कि वहीं चखकर देखेंगे। कार में एक पानी की बोतल रखी थी। उससे

नीरज अपनी पत्नी के साथ

आम को धोया और वहीं बैठे-बैठे खाया। बहुत अच्छा लगा तो चार किलो आम ले लिए। घर पहुँचते ही आम को फ्रिज में रखवाया और एक घंटे बाद जब खाने का समय हो रहा था, सिर्फ़ आम का ही लंच लिया। कहा कि मेरा पेट भर गया। अब रोटी नहीं खाऊँगा। दो-तीन दिन बाद फिर आम लेने गए और वही प्रक्रिया कि कार में बैठकर पानी से आम को धोना, वहाँ एक या दो आम को चखना और आना। लंच न लेकर सिर्फ़ आम खाना और उसके बाद एक कप दूध फिर से दोहराया गया। उनका बच्चों जैसा सरल व्यवहार कहीं-न-कहीं मन को गुदगुदा गया। मैंने कहा भी कि क्या पापा आप भी बिलकुल बच्चों की तरह करते हैं तो कहने लगे कि बुढ़ापे में आदमी की प्रवृत्ति बिल्कुल बच्चों जैसी हो जाती है। ❑

पुत्र और पौत्र के साथ

'फ़ेसबुक' वॉल से...

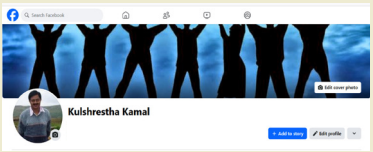

दफ़्तर की ओर से आयोजित एक कार्यक्रम में मुझे उन्हें लिवाने और छोड़ने का अवसर मिला था। मुलाक़ात के बाद शुभकामनाओं वाले उनके हस्ताक्षरित काग़ज़ के टुकड़े को मैंने काफ़ी संभाल कर रखा हुआ था। उनके महाप्रयाण के बाद उनसे अपनी यादगार बातों को जुलाई 2018 में अपनी फ़ेसबुक वॉल में अभिव्यक्त करे बिना नहीं रह सका।

'यत्र तत्र अन्यत्र' में इसी वॉल के अंश प्रस्तुत हैं।

-कुलश्रेष्ठ कमल

नीरजजी को याद करते हुए...

बात मार्च 1996 की है। गोपाल दास 'नीरज' से मुझे मिलने का मौक़ा तब मिला जब उनके गीत एवं काव्य पाठ का एक कार्यक्रम का आयोजन 'आजकल' द्वारा प्रकाशन विभाग के तत्वावधान में किया गया था। कार्यक्रम (नीरजजी के गीत एवं काव्य पाठ के) में आमंत्रित करने के लिए मुझे उन्हें लिवाने अलीगढ़ भेजा गया। तब मोबाइल फ़ोन आज की तरह व्यापक नहीं हुए थे। लैंडलाइन भी ठीक होना क़िस्मत की बात थी। बहरहाल उनके अलीगढ़ के आवास पर पहुँचने पर वे नहीं मिले। अलबत्ता आँगन में चमचमाती लाल रंग की स्टैडर्ड हैराल्ड कार ज़रूर खड़ी थी। दरअसल नीरजजी को आवश्यक काम से अचानक बाहर जाना पड़ा था। ख़ैर ऑफ़िस का कार्यक्रम आगे की तारीख़ पर मुक़र्रर कर दिया गया और फिर कार्यक्रम के लिए नीरजजी दिल्ली के किसी अन्य कार्यक्रम में भाग लेने के बाद आए थे। लौटने के लिए उनका टिकट शाम की अलीगढ़ जाने वाली ट्रेन का कराया गया और उन्हें स्टेशन छोड़ने की ड्यूटी भी मेरी ही लगाई गई। दिल्ली के पहाड़गंज स्टेशन तक क़रीब 20-25 मिनट के रास्ते में कार में मानो ढेर सारी बातें हो गईं– उनके फ़िल्मी दुनिया के सफ़र से अलीगढ़ वापसी तक की- (जो सर्वविदित है और दोहराने की शायद ज़रूरत नहीं)। उनकी एक नसीहत मुझे अब भी याद है कि बेटा वही काम करो जो तुम्हें अच्छा लगता हो और जिससे तुम प्यार करते हो। बे मन से काम करने

12 मार्च 1996 को प्रकाशन विभाग के तत्कालीन पटियाला हाउस मुख्यालय की पुस्तक दीर्घा में अपने गीतों और कविताओं से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करते गोपाल दास 'नीरज', मंचासीन अन्य व्यक्तियों में 'जनसत्ता' अख़बार के प्रधान सम्पादक प्रभाष जोशी, प्रकाशन विभाग के निदेशक ओमप्रकाश केजरीवाल और 'आजकल' के सम्पादक पंकज बिष्ट (सभी तत्कालीन) भी दिखाई दे रहे हैं।

से उस काम को न करना अच्छा। ऐसा वो मुम्बई से लौटने के बाद देवानंदजी के कई बार आग्रह करने पर भी फिर न जाने के

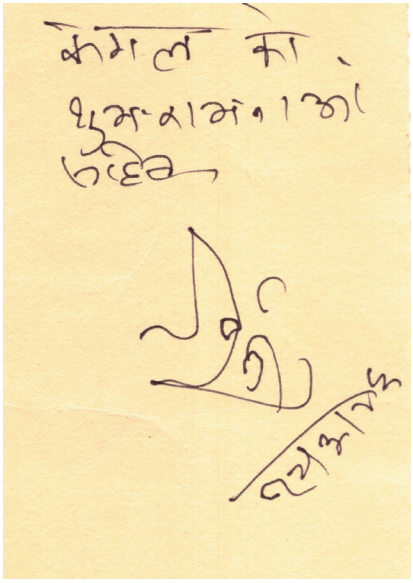

सन्दर्भ में कह रहे थे शायद। स्टेशन आते ही बातचीत का सिलसिला टूटा और वे कार से उतर गए लेकिन कोच तक जाने के लिए मुझे प्लेटफ़ार्म टिकट ख़रीदना था और तब तक ट्रेन रवाना होने का समय हो चुका था। एक बार तो मैं उनके साथ बिना प्लेटफ़ार्म टिकट लिए ही कम्पार्टमेंट में बिठाने के लिए बढ़ा, लेकिन उन्होंने भलेमानसी के साथ सख़्ती से मना कर दिया और कहा हम चले जाएँगे। चलते-चलते मैंने जल्दी से बटुए की एड्रेस बुक के कवर को ऑटोग्राफ़ के लिए आगे बढ़ा दिया और उन्होंने शुभकामनाएँ देते हुए हस्ताक्षर कर दिए, मैंने उनके चरण छूते हुए नमस्कार किया और वे बीड़ी का कश खींचते हुए प्लेटफ़ॉर्म की ओर बढ़ गए... ❑

जन्मदिवस विशेष

जैनेन्द्र की नज़र में
प्रेम, विवाह और स्त्री

जैनेन्द्र की कथा-यात्रा प्रेम, विवाह और स्त्री के सन्दर्भ में बहुत बीहड़ रास्तों से होकर गुज़री है। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में कई बार ऐसा लगा है कि आज के स्त्री-विमर्श के कोण से देखें तो जैनेन्द्र पुरुषवादी लेखक ही ठहरते हैं, कई जगह स्त्री को अपनी भावना की क़ैद की साज़िश रचते से, पर इस निष्कर्ष से पूर्व ज़रूरी है कि हम उनके कुछ उपन्यासों की राह से गुज़र लें।

जैनेन्द्र के कथा-साहित्य में प्रेम-निरूपण का मुद्दा कुछ विद्वानों को पुराना-सा, घिसा-पिटा-सा लग सकता है जबकि सच यह है कि यह इकहरा और सीधा विषय नहीं है। प्रेम के साथ ही पति-पत्नी का प्रेम भी जुड़ा है। जब हम जैनेन्द्र की बात करते हैं तो प्रेम के साथ आत्मा भी है, मन भी है और शरीर तो है ही। वे तत्त्व-मीमांसक ज़रूर हैं पर उनके कथा-साहित्य में प्रेम अमूर्त विषय भर नहीं है और न केवल वह दर्शन-विवेचन का विषय है। प्रकारान्तर से जैनेन्द्र के कथा-साहित्य में प्रेम का वास्ता स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के गहरे विश्लेषण से है।

जैनेन्द्र एक अर्थ में विरोधाभासी साहित्यकार हैं। सभी जानते हैं कि वे बहुत अंतर्मुखी, बहुत गूढ़ चिन्तक, दार्शनिक विचारधाराओं के आधार पर गाँधीवादी का लेबल पा चुके शान्तचित्त व्यक्ति थे पर उतना ही बड़ा सच यह भी है कि वे बहुत क्रान्तिकारी दृष्टि से सम्पन्न, विद्रोही प्रकृति के रचनाकार थे। अपने समूचे लेखन-काल में वे कथ्य और कहन– दोनों दृष्टियों से विवाद और अपवाद के केन्द्र रहे। एक दृढ़ता उनके मन्तव्यों में आद्योपान्त है। साठ-पार के हिन्दी पाठक जानते हैं कि पिछली सदी के सत्तर के दशक में 'धर्मयुग' में जैनेन्द्र का एक वक्तव्य छपा था– "साहित्यकार के लिए पत्नी के अतिरिक्त एक प्रेमिका का होना ज़रूरी है।" बहुत विवाद हुआ था, इस वक्तव्य पर! पुराने पाठक यह भी जानते होंगे कि तब 'धर्मयुग' में उनका एक स्तम्भ छपता था– 'इतस्ततः'। जैनेन्द्र को लेकर ही, बल्कि

राजेन्द्र गौतम
ई-मेल : rajendragautam99@yahoo.com

उनके वक्तव्यों के साथ जब श्लीलता और अश्लीलता पर एक बहस छिड़ी थी, तब भी बहुत विवाद हुआ था और बात इतनी बढ़ी थी कि धर्मवीर भारती को वह कॉलम ही बन्द करना पड़ा था। 'इतस्ततः' शीर्षक से जैनेन्द्र के निबन्धों का संग्रह इसके बाद ही आया था पर इस घटना से बहुत पहले सन् '32 में जब जैनेन्द्र 'सुनीता' लेकर आए थे, तब भी कम बवाल नहीं मचा था और तूफ़ान तो 'त्यागपत्र' की मृणाल ने भी बहुत ज़बरदस्त खड़ा किया था। ऐसे अनेक तथ्य हमें इसी निष्कर्ष तक ले जाते हैं कि यों तो उनके निबन्धों, कहानियों और उपन्यासों में दुनिया भर की बाते हैं परन्तु उनके रचनाकार का सबसे बड़ा सरोकार स्त्री-पुरुष सम्बन्ध रहा है। यह 'सम्बन्ध' अपने घेरे में विवाह-संस्था को भी लेता है और प्रेम को तो लेता ही है। यूँ भी ये सारे मुद्दे अलग-अलग हैं ही नहीं, बल्कि गड्मड् हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में सबसे बड़ा सवाल (और बवाल) नैतिकता का उठाया जाता रहा है। एक बड़ा मुद्दा यह है कि नैतिकता का सवाल स्त्री पर ही- उसके सतीत्व पर ही क्यों केन्द्रित रहता है? और जैनेन्द्र ने इसी मुद्दे को बार-बार उठाया है। उनके कथा-साहित्य में प्रेम-निरूपण निरपेक्ष एवं भाववादी भर नहीं है बल्कि नैतिकता के उलझाव के बिना उनके साहित्य में प्रेम-चित्रण है ही नहीं। एक कटु सत्य यह है कि जैनेन्द्र ने जब लिखना शुरू किया तब भी नैतिकता को लेकर– स्त्री और पुरुष को लेकर– दोहरे मानदण्ड समाज में थे।

जैनेन्द्र कुमार *(2 जनवरी, 1905 - 24 दिसम्बर, 1988)*

वास्तव में जैनेन्द्र का आना हिन्दी कथा-साहित्य का एक 'टर्निंग प्वाइंट' था। भारतीय साहित्य में तब एक दुनिया शरत्-रवीन्द्र की थी और दूसरी प्रसाद-प्रेमचन्द की। जैनेन्द्र जब आए तो कुछ विषयपरक समानताओं के आधार पर हिन्दी आलोचकों ने तो जैनेन्द्र को 'हिन्दी का शरत्' जैसा भ्रामक पद भी दे दिया था। अपने वक्तव्यों में जैनेन्द्र ने शरत् के महत्व को बहुत स्पष्ट रूप से रेखांकित भी किया है पर वहीं शरत् से अपनी दूरी को भी उन्होंने उतनी ही स्पष्टता से दिखलाया है। तब हिन्दी कथाकारों पर प्रभाव तो रवीन्द्र का भी कम नहीं था। जैनेन्द्र की 'सुनीता' को तो कुछ आलोचकों ने रवीन्द्रनाथ टैगोर के उपन्यास 'घरे बाहरे' की नक़ल कह भी दिया था। यूँ यह सच नहीं था। जैनेन्द्र ने इसके प्रभाव को सिर-माथे लिया पर यह भी कहा कि मैं उससे ('घरे बाहरे' से) आगे गया हूँ। यह 'आगे जाना' निस्सन्देह स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में अग्रगामी होना है, कुछ ऐसा ही आशय जैनेन्द्र का है। प्रेमचन्द कुछ दूसरे सवालों से ज़्यादा उलझे थे पर प्रेमचन्द-युग तक हिन्दी कथा-साहित्य सुधारवादी पुनरुत्थानवादी दृष्टि का ही वाहक अधिक था। सामाजिक रूढ़ियों, धार्मिक पाखण्डों और सामन्ती ताक़तों पर

प्रेमचन्द ने बहुत तीखे प्रहार किए हैं लेकिन समस्त प्रगतिशीलता के बावजूद स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में प्रेमचन्द प्रेम की सहजता को तो स्वीकार करते हैं पर विवाह से बाहर शारीरिक सम्बन्ध को वे दूर ही रखते हैं। 'निर्मला' में समस्या का एक अलग रूप है पर 'रंगभूमि' एवं 'गोदान' में तीन-चार स्पष्ट प्रेम-प्रसंग हैं। इन सन्दर्भों में प्रेमचन्द की क्या दृष्टि थी और जैनेन्द्र कैसे एक नई दृष्टि लेकर आए हैं, इसको समझने के लिए यहाँ उपर्युक्त उपन्यासों के दो कथन देख लेना ज़रूरी है। 'रंगभूमि' में विनय और सोफ़िया का प्रेम में डूबना तो साफ़ है पर विवाह के बिना शारीरिक दूरी की अनिवार्यता प्रेमचन्द बहुत स्पष्ट रूप से दिखलाते हैं। वे लिखते हैं, "किन्तु इतना एकान्त और इतनी स्वाधीनता होने पर भी दोनों एक-दूसरे से बहुत कम मिलते, दोनों ही न जाने क्यों सशंक रहते थे, उनमें मनोमालिन्य न था, दोनों प्रेम में डूबे हुए थे। दोनों उद्विग्न थे, दोनों विकल, दोनों अधीर किन्तु नैतिक बन्धनों की दृढ़ता दोनों को मिलने न देती थी।"

यहाँ उद्वेग, विकलता और अधीरता पर नैतिकता कितनी भारी पड़ रही है, देखा जा सकता है। 'गोदान' में सीलिया को मातादीन पत्नी रूप में स्वीकार करके ही पाता है पर मिस्टर मेहता और मिस मालती के बीच फिर वही नैतिकता की दीवार खड़ी है। मेहता मालती से जीवनभर साथ निभाने का संकल्प भले ही लें पर प्रेमचन्द मेहता की जीभ पर बैठ कर कहते हैं, "मिस मालती हसीन हैं, ख़ुशमिज़ाज समझदार हैं, रोशन-ख़्याल हैं और भी उनमें कितनी ही ख़ूबियाँ हैं लेकिन अपनी जीवन-संगिनी में जो बात देखना चाहता हूँ, वह बात नहीं है और न हो सकती है, मेरे ज़ेहन में औरत वफ़ा और त्याग की मूरत है जो अपनी बेज़ुबानी अपनी क़ुर्बानी से अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का अंश बन जाती है ...अगर मैं उसकी आँखों के सामने किसी दूसरी स्त्री से प्यार भी करूँ तो भी उसमें ईर्ष्या न जगे ...मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को सबसे श्रेष्ठ समझता हूँ। उसी तरह जैसे प्रेम, त्याग और श्रद्धा को हिंसा और कलह से श्रेष्ठ समझता हूँ। स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अँधेरे से। मनुष्य में क्षमा, दया, त्याग और अहिंसा जीवन के उज्ज्वलतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है।" बल्कि यहीं पर प्रेमचन्द नारी की जीवनगत सारी व्यापकता को अपहृत कर उसे केवल मातृत्व तक सीमित कर देते हैं। मेहता का ही कथन है, "नारी केवल माता है और इसके उपरान्त वह जो कुछ है वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना है, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विजय है।"

हमने प्रेमचन्द के ये लम्बे उद्धरण सोद्देश्य दिए हैं। स्त्री की आदर्श मूरत गढ़कर उसके छलने का लम्बा कार्यक्रम सदियों से चलता रहा है। प्रेमचन्द तक भी उसमें कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ था। जैनेन्द्र 1929 में 'परख' के साथ इसी पृष्ठभूमि में अवतरित होते हैं और उस समय तक जैनेन्द्र भी उसी सुधारवाद से आतंकित हैं। 'परख' की कट्टो बाल-विधवा है। सत्यधन उसकी चपलता से, उसकी मधुरता, उसकी

सुघड़ता से उस पर आसक्त हो जाता है। लगता है– जैनेन्द्र जल्दी ही विधवा-विवाह का एक आदर्श इसमें प्रस्तुत कर देंगे पर ऐसा होता नहीं। होता है तो एक 'वैधव्य-यज्ञ'। सत्यधन नायकत्व से स्खलित होता जाता है और कट्टो से विकर्षित भी। तब कट्टो के जीवन में अकस्मात बिहारी आता है। दोनों विवाह तो करते हैं पर एक संकल्प के साथ- "अब से हम दो शरीर पर एक प्राण होंगे।" प्राणों का अद्वैत और शरीरों का द्वैत प्रेमचन्दयुगीन सुधारवाद का ही अनुरणन है, अनुसरण भी! ज़रा ग़ौर करें 'परख' के इस उद्धरण पर- "प्रेम जीवन को बहलाने की वस्तु तो बन सकती है, लेकिन जीवन उसके लिए स्वाहा नहीं किया जा सकता, जीवन तो दायित्व है और विवाह वास्तव में उसकी पूर्णता की राह। ...प्रेम को इस दायित्वपूर्ण विवाह की बात में कैसे दख़ल देने दिया जाए!" जैनेन्द्र यूँ विवाह को सामाजिक समझौता और प्रेम को व्यक्तिगत निर्णय मानते हैं पर वे पहले उपन्यास 'परख' में ही नहीं, बहुत बाद में 'त्यागपत्र' में भी विवाह की ज़ोरदार वकालत करते हैं। पहले ही उपन्यास 'परख' की आकस्मिकता उनके सभी उपन्यासों और अधिकांश कहानियों का स्थायी गुण बन जाती है। उसी के सहारे जैनेन्द्र अपने इर्द-गिर्द एक रक्षा-कवच भी बुन लेते हैं। उन्होंने जिस बिन्दु पर प्रेमचन्द से अपने को अलग किया है और जो उनका एक बड़ा क्रान्तिकारी क़दम है- वह यह है कि वे नैतिकता और सतीत्व को पर्यायवाची नहीं मानते। औरत की स्वतन्त्र अस्मिता की भी बात करते हैं परन्तु तथ्य यह भी है कि या तो वह एक दुर्बल क्रान्तिकारी लेखक हैं या भाषा की कारीगरी के द्वारा स्त्री को छलते भी बहुत हैं। इस प्रकार हिन्दी में आगे 'नदी के द्वीप' की रेखा जैसी ऐसी नायिका आ सकी जो निर्मुक्त होकर देह के धरातल पर भुवन से कह सकती थी, "भुवन, आइ एम फुल्फ़िल्ड।" और शायद यही परम्परा आगे इतनी बलवती हो सकी कि बीसवीं शती के अंत तक ऐसी लेखिकाएँ हिन्दी में आईं, जिन्होंने सामाजिक वर्जना की बेड़ियों को झनझना कर तोड़ दिया है और दैहिक आस्वाद के धरातल पर निर्द्वंद्व रूप से स्त्री-पुरुष के नैकट्य के सूक्ष्म ब्यौरों के साथ कथा-रचनाएँ की हैं। यह उस समय पुरुष लेखकों के लिए भी इतना सहज और सरल नहीं था।

जैनेन्द्र की कथा-यात्रा प्रेम, विवाह और स्त्री के सन्दर्भ में बहुत बीहड़ रास्तों से होकर गुज़री है। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में कई बार ऐसा लगा है कि आज के स्त्री-विमर्श के कोण से देखें तो जैनेन्द्र पुरुषवादी लेखक ही ठहरते हैं, कई जगह स्त्री को अपनी भावना की क़ैद की साज़िश रचते से पर इस निष्कर्ष से पूर्व ज़रूरी है कि हम उनके कुछ उपन्यासों की राह से गुज़र लें।

'सुनीता' का हिन्दी में आना विवाह के बाहर प्रेम की स्वीकृति को लेकर आना है, पहली क्रान्तिकारी सूचना यह है। दूसरी अधिक क्रान्तिकारी सूचना यह कि जैनेन्द्र के लिए प्रेम छायावादी अतीन्द्रिय प्रेम नहीं है। वे अपनी बात बहुत साफ़ कर देते हैं। कहते हैं, "हमने हरिप्रसन्न और सुनीता नाम दिए हैं। यह नाम झूठ नहीं। सुनीता स्त्री है, हरिप्रसन्न

पुरुष हैं। उन नामों के बहुत नीचे जाकर उन दोनों में एक केवल स्त्री रह जाती है और दूसरा पुरुष रह जाता है ...नाना संज्ञाओं, विशेषणों और विविध सर्वनामों के सहारे जो मनुष्य जाति अपना काम चलाती हुई जा रही है, वह प्रथमतः द्विविध है- स्त्री और पुरुष। कुटुम्ब परिवार पीछे आते हैं, नाते, रिश्ते, नाम, गोत्र, मत, पन्थ, वर्ग, सम्प्रदाय सब पीछे आते हैं।"

जैनेन्द्र ने स्त्री और पुरुष की इकाइयों की हक़ीक़त की स्वीकृति के लिए सारे ही छिलके उतार कर अलग रख दिए हैं। शायद यह तैयारी है। हाँ, सुनीता के तन के वस्त्रों को भी पूर्णतः उतार देने की तैयारी है यह। श्रीकान्त सुनीता का पति है और हरिप्रसन्न श्रीकान्त का मित्र। एक, विवाहित है पर वह जीवन में ऊब और एकरसता ही पाता है। सुनीता और श्रीकान्त पति-पत्नी होकर भी उखड़े-उखड़े ऊबे-ऊबे हैं। दूसरा, हरिप्रसन्न क्रान्तिकारी है। 'घर' को जानता ही नहीं वह। 'बाहर' ही रहा है। लेखक आरम्भ में ही वैवाहिक जीवन की एकरसता और ऊब को एक समस्या–एक मुद्दे के रूप में कर चुका है। सुनीता और श्रीकान्त के जीवन में कुछ ऐसी ही एकरसता जन्म लेती जा रही है जिसका चरम रूप हम अज्ञेय की कहानी 'रोज़/गेंगेरीन' में देखते हैं। जैनेन्द्र मनःस्थितियों के चित्रक कथाकार हैं। अकारण-सी दिखने वाली एकरसता और ऊब को वे बहुत बारीकी से संकेतित करते हैं। "सुनीता, सुन्दरी सुनीता जब इसी तरह से काम कर रही होती है तब यदि अकेले हुए और ख़ाली हुए तो श्रीकान्त सामने दीवार में एकटक देखते हुए एक साँस लेते हैं और टहलने लगते हैं। और काम कर चुकने के बाद सुनीता, अनिंद्य यौवना सुनीता काम से चुक गई है और निरुद्देश्य कमरे में हुई तो सामने दीवार में एकटक देखती हुई एक गहरी साँस लेती है, दूसरी लेती है और झटपट किसी दूसरे काम को ढूँढ लेती है और उसमें लग जाती है।" सम्बन्धों की इस तनावभरी 'शान्ति' के तलब में हरिप्रसन्न का अस्तित्व एक कँकड़ी की तरह लहर उठाता है।

यहाँ श्रीकान्त की मानसिक क्रियाएँ आगामी घटनाओं की पृष्ठभूमि तैयार कर देती हैं। अलसता और जड़ता को तोड़ने के लिए वह घर की ऋतु बदलना चाहता है। वह आज और कल में बन्दी रहने की अपेक्षा शाश्वत, सनातन और अनंत को चखने की चाह व्यक्त करता है। यह एकरसता दोतरफ़ा है और उससे निकलने के प्रयास भी। सुनीता का 'जस्टिफ़िकेशन' जैसा यह कथन कहीं उसी गहरी ऊब से उपज है : "वह सोचती, स्त्री फिर किसलिए है यदि पुरुष को प्रयोजनदान फलदान नहीं करती। क्या स्त्री इसलिए है कि पुरुष को अपने से निरपेक्ष रहने दे। और यहाँ प्रकृति को बंध्या? क्योंकि दुनिया को रेगिस्तान नहीं होना है, क्योंकि उसकी लहलहाकार हरियाली हो उठना है। इसीलिए क्या पुरुषों के जगत-विधाता से हम स्त्रियों को नहीं रचा है? नहीं, हरिप्रसन्न को यूँ खुला ही खुला, छूटा ही छूटा एक कैसे रहने दिया जा सकता है?" यह मनःस्थिति एक क्रमिक परिणति है, यह विवाह के दायरे को तोड़ने की परिणति है। स्त्री-पुरुष पति-पत्नी के युग्म तक महदूद

रहें या उससे बाहर भी उनका कोई अस्तित्व है, इसे सुनीता इससे पूर्व ही मीरा के चरित्र के माध्यम से निर्धारित करने का प्रयास कर चुकी थी। मीरा का चरित्र उसके मन में एक हलचल उठा चुका था। फ्रायड का पीड़ा-दर्शन आचरण के निर्धारण को एक ओट भी दे रहा था। स्थिति कुछ यूँ थी : "सुनीता 'मीरा' फ़िल्म देखकर पति के प्रति पीड़ाग्रस्त हो गई। वो जैसे पति के निकट आ गई है, पर वह नहीं जानती कि उसके हाथों में अपने को कैसे दे पर वह मीरा को समझना चाहती है, मीरा के पति की ओर से मीरा को भर्त्सना भी देना चाहती है, फिर भी भीतर को समझना चाहती है। मीरा पतिव्रता बिना हुए भी अरे! क्यों उसकी श्रद्धाभाजन बनी हुई है वह अपने से झगड़कर चाहती है कि मीरा को खण्डिता और लाँछिता ठहरा दें, किन्तु मीरा के प्रति उसके भीतर का स्नेह और वेदना उमड़ी ही आती है, बही ही आती है।"

लेखक मनःस्थितियों के अनुकूल परिस्थितियों का भी निर्माण करता है। सुनीता पति के आदेश पर हरिप्रसन्न की प्रसन्नता का ख़्याल रखती है। श्रीकान्त सुनीता को अपना चित्र भी उसे देने के लिए कहता है। यह मनोवैज्ञानिक एवं सांकेतिक है कि हरिप्रसन्न के घर में रहते श्रीकान्त किसी काम से तीन-चार दिन के लिए बाहर भी चला जाता है। उपन्यास हम सबने पढ़ा है, अतः बताने की ज़रूरत नहीं है कि किस प्रकार आधी रात में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ दिखलाने के लिए हरिप्रसन्न सुनीता को जंगल में ले जाता है और तब उस काठ में भी कोमल अँखुए फूटते हैं। वह कहता है, "सुनीता, मैं अब तुम्हें भाभी नहीं कहता, जिन्हें भाई कहता हूँ, उनकी ही मार्फ़त तुम तक पहुँचूँ, अब ऐसा नहीं है। मैं तुम्हें सुनीता कहूँगा। हम सीधे एक-दूसरे के सामने हैं ...श्रीकान्त तुम्हारा पति है, मेरा मित्र। पति एक होता है, मित्र भी शायद एक ही होता है ...मैं सच कहता हूँ सुनीता ...मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ– प्रेम? लेकिन मैं भी नहीं जानता हूँ सुनीता।" सुनीता हत्प्रभ है। संकट गहराता है। उद्वेल के क्षण भयानक उथल-पुथल मचाते हैं। अचानक सुनीता एक निर्णय लेती है। ...वह कहती है, "हरी मुझे लो, मुझे पाओ, इस आवरण को भी हटाए देती हूँ। कहीं मुझे ढँक रहा है। मुझे चाहते हो न? मैं इंकार नहीं करती, यह लो।" यह आकस्मिकता हरिप्रसन्न को ग्रसती है। वह ठिठकता है। निढाल होकर बैठता है। 'प्रकृति के उलटे कॉमे' जैसी आकृति वाला। कहानी हम नहीं दोहराएँगे। बस इतना कहेंगे कि पलायन यहाँ हरिप्रसन्न का होता ज़रूर है पर जाते हुए सुनीता उसके पाँव भी छूती है। प्रेम की अस्वीकृति किसी ओर नहीं है। बस लेखक ने विवाहेतर शारीरिक सम्बन्ध को टाला है- हाँ, टाला भर है- अपनी अगली कृति के लिए स्थगित भर किया है। विवाह पर थोड़ा और विश्वास जमता है उसका, क्योंकि लौटी हुई सुनीता को श्रीकान्त जब आलिंगन में लेता है तो उसमें नव वधू की छवि देखता है। ज़रा इस शे'र से मिलान कीजिए–

'वसल के बाद आईना तो देख ए हसीं
तेरे जमाल की दोशीज़गी निखर गई।'

कट्टो और सुनीता के बाद जैनेन्द्र लेकर

आते हैं- मृणाल को। हिन्दी कथा-साहित्य में 'त्यागपत्र' की मृणाल स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का नया अध्याय खोलती है। उसने भी अनेक किशोरियों द्वारा किया जाने वाला एक 'अपराध' किया था। अपनी सहेली के भाई से प्यार किया था। अपने भाई और भाभी के संरक्षण में रहते हुए इस आचरण की सज़ा तो उसे मिलनी ही थी। उसकी पिटाई हुई और उससे भी भयानक यह हुआ कि उसे एक वय-प्राप्त, लगभग अशिक्षित धनी से ब्याह दिया गया। भोली मृणाल अपने विवाह-पूर्व प्रेम को पति के सामने उद्घाटित कर देती है और तिरस्कार की पात्र बनती है। अलग मकान में छोड़ी मृणाल उसके जीवन से ही अलग हो जाती है। विचित्र तो यह है कि इस निर्णय में भी वह पति की इच्छा का सम्मान देखती है। त्यक्ता मृणाल रोगग्रस्त होती है। सुश्रूषा करता है, एक कोयलेवाला जो उसके रूप पर मुग्ध और लुब्ध है। मृणाल यह तो स्वीकार नहीं करती कि वह भी उससे प्रेम करती है, पर करुणा के कारण और सुश्रूषा के प्रतिदान में उसे अपना शरीर दे देती है। सतीत्व और नैतिकता का जो संघर्ष सुनीता में एक अधूरे अध्याय-सा था, यहाँ आकर वह पूर्णता पाता है और प्रेम की एक नई परिभाषा भी हमारे सामने आती है। यहाँ एक वैचारिक आवरण की स्थिति दिखाई देती है। लेखक ने मनोवैज्ञानिक दुराव का सहारा लिया है। सामाजिक स्थितियों को समझते-देखते हुए मृणाल कोयले वाले से अपने सम्बन्ध को प्रेम मानने की हिम्मत नहीं करती। तो वह आख़िर इसकी व्याख्या कैसे करे? वह करुणा को इसकी पृष्ठभूमि में लाकर वैचारिक आवरण का सहारा लेती है। हिन्दी उपन्यास को जैनेन्द्र सरल-सपाट रास्ते पर ले जाने की अपेक्षा गड्ढों-खाइयों-टीलों वाले एक अबूझ बीहड़ तक ले आते हैं जिसमें यथार्थ के अजीब झाड़-झँखाड़ हैं। यह है मृणाल का स्पष्टीकरण, "मेरे रूप का लोभ उस पर बढ़ता गया, वह नशा हो आया। मुझे उस समय उस पर बड़ी करुणा आई। उस अभागे आदमी का मद उस पर इतना सवार हो गया कि मैं कुछ कह नहीं सकती। वह अपने परिवार को भूल गया, मेरे लिए सब कुछ स्वाहा करने पर तुल गया... उसका प्रेम स्वीकार करने की कल्पना भी दुर्विसह्य थी... पर मैं उसके हाथ से निकलती तो अनर्थ ही कर बैठता... सच कहती हूँ प्रमोद कि उस आदमी पर इतनी करुणा आई कि मैं ही जानती हूँ।"

मृणाल नर्स बनती है पर इसके लिए अनिवार्य शर्त ईसाइयत को स्वीकार नहीं करती और आर्थिक अवलम्बन खो बैठती है। अंततः उसका बहकता-भटकता जीवन दुनिया के सबसे पुराने पेशे को स्वीकार लेता है। वह वेश्या बन जाती है। इस घटनाक्रम में एक पात्र अभी बाहर नज़र आ रहा है, यद्यपि कथा का मूल वाचक वही है। मृणाल प्रमोद को अपनी कहानी सुनाती है। प्रमोद की वह बुआ है। रिश्तों को फिर एक नए रूप में जैनेन्द्र परिभाषित करते हैं। अज्ञेय की 'बहनों' का संसार तो हिन्दी में बाद में आता है। शादी से पूर्व मृणाल प्रमोद की संरक्षिका थी, वात्सल्य और स्नेह से भरी। अनुराग के रंग अनेक हैं, माना कि मृणाल और प्रमोद का दैहिक रिश्ता नहीं है, या कहें, हो नहीं

पाया है! पर जो रिश्ता है, उसे मृणाल मानती तो प्रेम ही है। अपने जीवन के अन्तिम अप्रिय अध्याय में पहुँचकर वह उससे कहती है, "तुम न आओ, तो ही भला है। तुम्हारा प्रेम खोना मुझे असह्य होगा। तुम्हारा प्रेम मुझे स्वच्छ रखता है पर डर है कि तुम यहाँ आओ और कहीं बचा-खुचा तुम्हारा प्रेम भी मेरे हाथों से जाता रहे!" अबूझ अनाम रिश्तों को पहचानने की ही कोशिश में वह कहती है, "बता, मैं आज तेरी क्या हूँ? कभी यह सत्य था कि मैं तेरी बुआ थी पर उस बात को मैंने अपने हाथों से अच्छी तरह तोड़-ताड़ कर धूल में पटक दिया।" वास्तविकता यह है कि जैनेन्द्र उस समय रिश्तों के, प्रेम के अनेक सवालों से घिरे थे और वे 'त्यागपत्र' को एक प्रयोगशाला बना देते हैं। मृणाल की बहुविध भूमिकाएँ यही संकेत देती हैं। विचित्र तो यह है कि विवाह से छली जाकर भी मृणाल विवाह को ही स्थापित करती है। कहती है, "विवाह भावुकता का प्रश्न नहीं, व्यवस्था का प्रश्न है। वह प्रश्न क्या यूँ टाले टल सकता है? वह गाँठ है जो बँधी कि खुल नहीं सकती। टूटे तो टूट भले ही जाए लेकिन टूटना कब किसका श्रेयस्कर है?"

यूरोप में सिमोन द बुआ की पुस्तक 'द सैकंड सेक्स' और उसके बाद की बहुत-सी पोथियाँ बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में स्त्री-विमर्श की जिस धारा को तीव्रतर करती हैं, उसकी भारी धमक गत चालीस वर्षों से भारत में और हिन्दी साहित्य में भी सुनाई दे रही है पर जैनेन्द्र के साहित्य में यह प्रश्न बहुत पहले ही उठ चुका था। स्त्री-अस्मिता के सन्दर्भ में उन्होंने लिखा था, "असल में व्यक्तित्व की दृष्टि से दोनों बिल्कुल समान हैं और जहाँ व्यक्ति की हैसियत है, स्त्री और पुरुष में भेद करना फ़िज़ूल है।" यह बात दीगर है कि उनके कथा-साहित्य में यह भेद बदस्तूर मौजूद है। फ़िलहाल 'कल्याणी' को लें, जो मृणाल के बाद जैनेन्द्र द्वारा सृष्ट एक और नारी है।

कल्याणी डॉक्टर है, उसका पति भी उसका हमउम्र और डॉक्टर ही है पर क्या सुशिक्षित और स्वावलम्बी कल्याणी नारी-मुक्ति के आदर्श को पा सकी? जैनेन्द्र को लगता है कि आर्थिक मुक्ति नारी-मुक्ति की समस्या का समाधान नहीं, आरम्भ है। कल्याणी के सामने एक प्रश्न है- "विवाह से स्त्री पत्नी बनती है, पत्नी माने गृहिणी, पत्नी से पहले स्त्री कुछ नहीं होती, बस कन्या होती है पर मैं कुछ थी, निरी कन्या न थी। डॉक्टर थी। अब सवाल है मेरी शादी, मेरी डॉक्टरी, मेरा पत्नीत्व, मेरा निजत्व, ये परस्पर कैसे निभें?" द्वंद्व और गहराता है, "मैंने कहा, मैं आपके मन की गृहलक्ष्मी बनकर स्वयं भी रहना चाहती हूँ पर तभी रह सकती हूँ, जब डॉक्टर बनकर अंतःपुर की शोभा मुझसे नहीं होगी ...मैंने कहा, दोनों में मुझे चुन कर दे दें- पातिव्रत्य या डॉक्टरी।" यहाँ एक आशा जगती है कि जैनेन्द्र की प्रेम-कहानी कुछ नई होगी। नारी की बन्दिशों की कुछ खिड़कियों को वे खोलेंगे पर विचित्र विडम्बना यह है कि जैनेन्द्र में बार-बार प्रत्यावर्तन मिलता है। कल्याणी असमायोजन की भयंकर समस्या से गुज़रती है पर जो आदर्श वह स्त्री के सामने रखती है, वह धुर पुराणवादी है–

"मैं पूछती हूँ, दुराचारिणी स्त्री को मर क्यों नहीं जाना चाहिए। स्त्री-स्वातन्त्र्य और कुछ नहीं, मातृत्व से बचने की चाह है... स्त्री को सीखना होगा कि यही सनातन सतीत्व है... उसका कुछ अलग न रहे, सब पति में खो जाए। स्मरण रहे कि यह पति व्यक्ति नहीं एक प्रतीक है। उससे सती को यह सोचने का अधिकार नहीं है कि पति सदोष हो सकता है। अपंग हो, विकलांग हो, जैसा भी हो। पति है, पति देवता है।" लगता है कल्याणी पुराणों की या 'गोदान' के मेहता की भाषा बोल रही है। अधिकारों की खोज में निकली कल्याणी जिस तरह से आज की स्त्री को अधिकार-वंचिता होने का आदर्श प्रस्तुत करती है, वह इसी बात का संकेत है कि जैनेन्द्र स्त्री के जीवन में यथा-स्थिति चाहते हैं, बस एक अंतर के साथ! वे उसे पूर्व प्रेमी से सम्बन्ध रखने की स्वतन्त्रता भर देना चाहते हैं। उन्होंने एक जगह पर लिखा है- "प्रेमी और प्रेमिका होना बन्द नहीं होने वाला।... साथ ही पति-पत्नी के बिना समाज और व्यवस्था की कल्पना नहीं हो पाती।" अन्यत्र वे यह भी लिखते हैं, "प्रेमिका के लिए प्रेम इसलिए होता है कि वह पत्नी जो नहीं है। यानी मन प्राप्त के प्रति आकर्षण अनुभव नहीं करता, अप्राप्य पर जाता है। बिल्कुल आवश्यक नहीं कि प्रेयसी पत्नी से अधिक सुन्दरी हो। आवश्यक यह है कि उधर दुष्प्राप्यता का बोध हो।"

विचित्र यह है जैनेन्द्र के यहाँ इन सारी कठिनाइयों का हल बहुत सरल है। "यह आवश्यक है कि पति के मन में प्रेम का मान हो। ईर्ष्या और विग्रह को उचित माना जाना समाप्त हो जाए। उसी तरह पत्नी में पति की प्रेयसी के लिए आदर होना चाहिए। सौतिया डाह की यदि परम्परा है, तो मानना चाहिए कि वह बर्बर युग की है। उसमें मनुष्यता नहीं पशुता है।" जैनेन्द्र जिस सभ्य युग की, जिस खुले समाज की तस्वीर अपने कथा-साहित्य में बनाते रहे, दुर्भाग्य से उसे अमली जामा पहनाने का सारा दायित्व स्त्री पात्रों पर डालते रहे। कट्टो, सुनीता, मृणाल, कल्याणी, सुखदा, चारु, रंजना– उनके इसी यज्ञ का हिस्सा बनी हैं। प्रेम के सन्दर्भ में जैनेन्द्र के एक पुरुषवादी दर्शन गढ़ते रहे और विचित्र यह है कि यह गढ़ना स्त्री के प्रति संवेदनशील होने के छद्म में घटित हुआ। वे एक दार्शनिक थे। इस नाते अपनी बात को तर्कों से सिद्ध करना उनके लिए असम्भव नहीं था पर इसमें दो राय नहीं है कि प्रेमचन्द के बाद वे स्त्री-पुरुष सम्बन्धों और उनके बीच विद्यमान या अनुपस्थित प्रेम का नितान्त नया सन्दर्भ कथा-साहित्य में लेकर आते हैं। उपन्यासों के समानान्तर उनकी अनेक कहानियाँ इन्हीं सवालों से जुड़ी हैं। 'जाह्नवी', 'पत्नी', 'एक रात', 'ग्रामोफ़ोन का रिकार्ड', 'विज्ञान' आदि कहानियों में उन्होंने रिश्तों की ही बारीकी से पड़ताल की है। 'जाह्नवी' में एक किशोरी का तय किए गए विवाह से अस्वीकार उस समय को देखते हुए हिम्मत का परिचायक है।

जैनेन्द्र के सभी स्त्री-पात्र आरम्भ में जितना विस्फोटक विरोध दिखाते हैं, बाद में वह विरोध बहुत अंतर्मुखी हो जाता है। एक और रेखांकनीय बात यह है कि जैनेन्द्र सदैव

अपने समय से आगे रहे हैं। आज हम जिस बाज़ारवाद को सुन रहे हैं, उसे जैनेन्द्र ने पहले ही भाँप लिया था। 20 फरवरी, 1984 को उन्होंने पटना कॉलेज में दिए गए एक भाषण में प्रेम को लेकर कई उल्लेखनीय टिप्पणियाँ की हैं। उनके कथा-साहित्य में प्रेम की अंतर्प्रवाही व्यंजना को समझने के लिए इनमें से कुछ का उद्धरण यहाँ अपेक्षित है। इस भाषण में वे कहते हैं- ''आज स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के बीच बाज़ार आ गया है... यह सारा खेल मस्तिष्क का है। इसके मुक़ाबले मैं प्यार को खड़ा करता हूँ। पैसे और प्यार के बीच का सामंजस्य आज हिल गया है।" वे देखते हैं कि पश्चिमी अस्तित्ववाद अब पति-पत्नी के बीच भी आ गया है। प्रेम के साथ घृणा भी उदित हुई है। उन्हें लगता है, "आज पति-पत्नी के बीच सामंजस्य रह नहीं गया। तनाव है। बनाव रह नहीं गया। यह सब देखते-देखते मैं इस निणर्य पर पहुँचा हूँ कि प्रेम इलाज है। वह प्रेम नहीं जो घृणा पर चले। एक को घृणा पर दूसरे को प्रेम नहीं किया जा सकता। जहाँ भोग है, वहाँ उत्कृष्टि नहीं। प्रेम में उत्कृष्टि को तो रखना होगा। वहाँ 'इमोशनफ़ुलनैस' है, प्रेम निरपवाद है। पत्नी के प्रति प्रेम और दूसरों के प्रति हिंसा है।" वे मानते हैं, "प्रेम जीवित शहादत का नाम है। आदमी को पार कर चला जाता है प्रेम। ब्रह्म तक चला जाता है प्रेम। यानी ब्रह्म में वही हो सकता है जो प्रेम में हो।"

जैनेन्द्र अपने जीवन के 'उत्तरार्द्ध' में जब इन सवालों से टकरा रहे थे, तब उन्होंने 'दशार्क' लिखा। इस उपन्यास में भी प्रेम का सम्पूर्ण प्रयोग वे स्त्री पात्र को लेकर ही करते हैं। रंजना घर से निकल जाती है- प्रेम को विस्तार देने के लिए और महत्तर की तलाश में। इस निकलने को जैनेन्द्र बुद्ध और महावीर के निष्क्रमण की तरह मानते हैं। "ये इसलिए निकले क्योंकि प्रेम सीमा के लिए घर छोटा था। यह सब पुरुष का प्रयोग था। मैंने नारी के लिए सोचा- प्रेम के विस्तार के लिए घर से स्त्री क्यों नहीं निकल सकती। प्रेम के लिए घर को जला देना बड़ी बात है पर सम्भव है क्या?" जैनेन्द्र जब इस प्रकार वैश्विक धरातल पर अपने कथा साहित्य को लाते हैं तो उन्होंने अपने पश्चिम के अनुभव को भी समेटा है।

हम उनके कई उल्लेखनीय उपन्यासों के बीच से गुज़रे हैं। यह गुज़रना हमें इसी निष्कर्ष पर ले जाता है कि जैनेन्द्र की मान्यताओं से, विचारधारा से असहमति की तो बहुत गुंजाइश है, वे प्रश्नों के घेरे में तो हैं पर इससे क़तई इन्कार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने अपने समय में बहुत साहसपूर्वक स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के विश्लेषण का जोखिम उठाया है। बड़े रचनाकार ही ऐसा जोखिम उठाते हैं। जैनेन्द्र का आना हिन्दी कथा साहित्य की समूची धारा को एक नया मोड़ देता है। यह माना जा सकता है कि प्रेम सम्बन्धी उनकी कई धारणाएँ निजी हैं, वे सर्व-स्वीकार्य भी नहीं हुई हैं पर उनकी अनुपस्थिति में हिन्दी कथा साहित्य बीसवीं सदी के चौथे-पाँचवें दशकों में वह प्रौढ़ता प्राप्त नहीं कर सकता था जो उनके होने से इसमें सम्भव हुई है। इस भूमिका के लिए ही जैनेन्द्र का इतिहास-पुरुष बने रहना तय है। ❑

पुण्यतिथि

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की उर्दू काव्य में चमक

'रसा' की ग़ज़लों में उर्दू शायरी के परम्परागत विषय यथा गुल (पुष्प), बुलबुल (एक पक्षी), बुत (मूर्ति अर्थात् प्रेमिका), यार (मित्र), लब (अधर), रुख़सार (कपोल), काकुल (ज़ुल्फ़, केश), मैकदा या मयख़ाना (मधुशाला) साग़र या जाम (मदिरा पान हेतु प्याला), साक़ी (शराब पिलाने वाला), गुलचीं (फूल चुनने वाला), गुलशन अथवा चमन (मधुबन), सहर (प्रातः), महशर या सूर (प्रलय), शोला (लपट), इश्क़ (प्रेम), सैयाद (शिकारी), क़फ़स (पिंजरा), बोसा (चुम्बन) आदि का भी सजीव चित्रण है।

असद रज़ा
ई-मेल : asadrnaqvi @gmail.com

यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को भारत के 'इन्दु' अर्थात् चाँद की उपाधि से सुशोभित किया गया था परन्तु वास्तव में वह साहित्य के ऐसे सूर्य हैं जिसकी आभा केवल राष्ट्र भाषा हिन्दी तक ही सीमित नहीं है अपितु संस्कृत, उर्दू, गुजराती, बाँग्ला और मारवाड़ी आदि भारतीय भाषाओं तक भी इस महान रचनाकार की चमक पहुँची लेकिन उर्दू काव्य में भारतेन्दु का कृतित्व अति महत्वपूर्ण और सराहनीय रहा है। यद्यपि आधुनिक हिन्दी साहित्य के लिए भारतेन्दुजी का इतना अधिक योगदान है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु युग का भी स्वर्णिम उल्लेख है, मगर उर्दू शायरी में भी उन्होंने अपना प्रशंसनीय स्थान बनाया। वह 'रसा' तख़ल्लुस (उपनाम) के साथ उर्दू में शे'र कहा करते थे। 'रसा' का हिन्दी में अर्थ है 'ऊँची पहुँच वाला' और वास्तव में भारतेन्दु उर्दू शायरी में ऊँची पैठ रखते थे और उर्दू शायरी के सभी पक्षों व परम्पराओं से भली-भाँति परिचित थे। उन्होंने इस भाषा की लगभग सभी प्रचलित विधाओं यथा ग़ज़ल, नज़्म व रुबाई आदि में उच्च कोटि के शे'र कहे। भारतेन्दु ने अपने उर्दू काव्य में जीवन-मरण के दर्शन, मानव की अपूर्ण इच्छाएँ और मृत्यु के आगमन को प्रस्तुत किया है तथा उनके निम्नलिखित ये शे'र संकलित ग्रन्थ 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली-4' से उद्धृत किए गए हैं–

जीवन-मरण के दर्शन से ओत-प्रोत रसा के ये शे'र विचारोत्तेजक हैं–

'आ गई सर पर क़ज़ा तो सारा सामाँ रह गया
ऐ फ़लक क्या-क्या हमारे दिल में अरमाँ रह गया।'

अर्थात् सर पर क़ज़ा (मृत्यु) तो आ गई परन्तु सारा सामाँ (सांसारिक वस्तुएँ) यहीं रह गया, कुछ साथ नहीं ले जा सकते, अतः शायर फ़लक (आसमान) यानी विधि को सम्बोधित करते हुए कहता है कि उसके दिल के अरमान (इच्छाएँ) अपूर्ण ही रह गए।

इसी तरह 'रसा' दुनिया की क्षणभंगुरता का चित्रण करते हुए कहते हैं–

'बाग़बाँ है चार दिन की बाग़े आलम में बहार
फूल सब मुरझा गए, ख़ाली बयाबाँ रह गया।'

बाग़बाँ (माली) को सम्बोधित करते हुए शायर कहते हैं कि बाग़े आलम (संसार रूपी उपवन) में बहार चार दिन की अर्थात् अस्थाई है, फूल मुरझाने के पश्चात अब बयाबाँ (उजड़ा बाग़) ही रह गया है।

भारतेन्दुजी का यह शे'र बिहारी के इस दोहे की याद दिलाता है–

'जिन दिन देखे वे कुसुम गई सुबीत बहार
अब अलि रही गुलाब में अपत कँटीली डार।'

इसी प्रकार भारतेन्दु उर्फ़ 'रसा' की यह रुबाई (चार पंक्तियों की काव्य विधा) उर्दू समाज की मजलिसों (गोष्ठियों) में अनेक बुद्धिजीवियों को पढ़ते हुए लेखक ने अपने कानों से सुना है तथा श्रोताओं को इस रुबाई पर वाह-वाह करते देखा है–

'रहमत का तेरी उम्मीदवार आया हूँ
मुँह ढाँपे कफ़न में शर्मसार आया हूँ
आने न दिया बारे गुनाह ने पैदल
ताबूत में काँधे पर सवार आया हूँ।'

शायर 'रसा' के अनुसार वह ईश्वर की रहमत (कृपा) का उम्मीदवार (प्रत्याशी) है और शर्मसार होकर उसने अपना मुँह कफ़न से ढाँप रखा है, चूँकि बारे (बोझ) गुनाह (पाप) ने पैदल नहीं चलने दिया, अतः वह ताबूत (शव रखने का बक्स) में कंधों पर सवार होकर आया है।

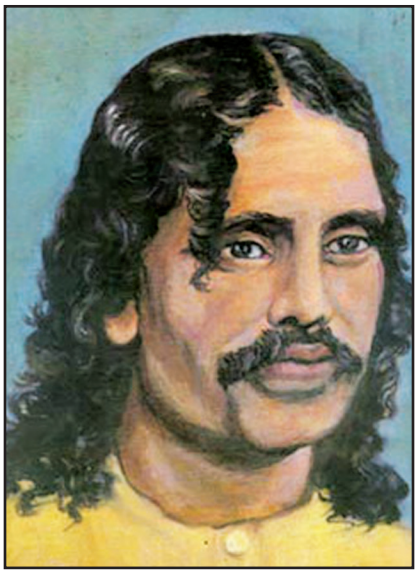

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
(9 सितम्बर, 1850 - 6 जनवरी, 1885)

'रसा' की ग़ज़लों में उर्दू शायरी के परम्परागत विषय यथा गुल (पुष्प), बुलबुल (एक पक्षी), बुत (मूर्ति अर्थात् प्रेमिका), यार (मित्र), लब (अधर), रुख़सार (कपोल), काकुल (जुल्फ़, केश), मैकदा या मयख़ाना (मधुशाला) साग़र या जाम (मदिरा पान हेतु प्याला), साक़ी (शराब पिलाने वाला), गुलचीं (फूल चुनने वाला), गुलशन अथवा चमन (मधुबन), सहर (प्रातः), महशर या सूर (प्रलय), शोला (लपट), इश्क़ (प्रेम), सैयाद (शिकारी), क़फ़स (पिंजरा), बोसा (चुम्बन) आदि का भी सजीव चित्रण है। अतः उनकी ग़ज़लों के कुछ शे'रों पर विचार

करें–

'ध्यान आ गया जो शाम को उस ज़ुल्फ़ का 'रसा'

उलझन में सारी रात हमारी बसर हुई।'

अथवा

'अजब जोबन है गुल पर आमदे फ़सले बहारी है

शिताब आ साक़िया गुलरू कि तेरी यादगारी है।'

शायर 'रसा' कहते हैं कि गुलरू (फूल जैसे मुखड़े वाले) साक़िया (मदिरा पिलाने वाले) शिताब (जल्द) आ कि गुल पर फ़सलेबहारी (वसंत) की आमद पर विचित्र जोबन आया हुआ है।

'फिर मुझे लिखना जो वस्फ़े रूए जाना हो गया

वाजिब इस जा पर क़लम को सर झुकाना हो गया।'

रूए जाना (प्रेमिका के मुख) का वस्फ़ (विशेषता) लिखना पड़ा तो इस जा (स्थान) पर क़लम को सर झुकाना वाजिब हो गया।

उर्दू काव्य में मन्दिर तथा काबा में एक ही ख़ुदा या ईश्वर के दर्शन करने पर बल दिया गया है, दुइ (द्वैत) का परदा उठते ही मस्जिद में भी सनम (मूर्ति अर्थात् प्रेमिका रूपी ईश्वर) दिखाई पड़ता है, इसलिए रसा कहते हैं–

'उठा दुइ का जो परदा हमारी आँखों से

तो काबे में भी रहा बस वही सनम बाक़ी।'

इसी विचार को भारतेन्दु अपने एक दूसरे शे'र में इस तरह कहते हैं–

'देखूँगा मिहराबे हरम याद आएगी अबरुए सनम

मेरे जाने से मस्जिद भी बुतख़ाना बन जाएगी।'

अर्थात् शायर के हरम (मस्जिद) की मिहराब (बाँग देने वाला कटार के आकार का स्थान) देखने से सनम की अबरू (कटार जैसी भौंहें) याद आएँगी और इस तरह मस्जिद भी बुतख़ाना बन जाएगी।

एक अन्य शे'र में रसा लिखते हैं–

'बुते काफ़िर जो तू मुझ से ख़फ़ा है

नहीं कुछ ख़ौफ़ मेरा भी ख़ुदा है।'

बुते काफ़िर (मूर्ति जैसी प्रेमिका) जो तू शायर से ख़फ़ा है तो उसे भी कोई ख़ौफ़ नहीं है क्योंकि उसका भी ख़ुदा है।

'रिहा करता नहीं सैयाद हम को मौसमे गुल में

क़फ़स में दम जो घबराता है सरदे दे पटकते हैं।'

मौसमे गुल (वसंत) में भी सैयाद (शिकारी) हमें रिहा नहीं करता, इसलिए क़फ़स (पिंजरे) में जब दम घबराता है तो हम सर दे दे पटकते हैं।

रसा का एक ऐसा ही उर्दू परम्परा का शे'र है–

'मैकदे से तेरा दीवाना जो बाहर होगा

एक में शीशा और इक हाथ में साग़र होगा।'

अर्थात् मैकदे (मधुशाला) से तेरा दीवाना (अर्द्ध विक्षिप्त) जब बाहर होगा तो उसके एक हाथ में शीशा (बोतल) और दूसरे हाथ में साग़र (शराब पीने का प्याला) होगा।

इसी प्रकार प्रेमिका के वस्त्रों का चित्रण करते हुए भारतेन्दु कहते हैं–

'चम्पई गरचे दुपट्टा है तो गुलदार है बेल

सैरे गुलशन को चले आते हैं गुलशन बनकर।'

प्रेयसी गरचे (यद्यपि) चम्पई (सुनहरे)

दुपट्टा, जिस पर गुलदार (फूलों वाली) बेल है, ओढ़ कर गुलशन (मधुबन) की सैर करने आया है परन्तु वह स्वयं गुलशन बना हुआ है, यहाँ शायर ने प्रेमिका के सौन्दर्य की तुलना गुलशन से की है।

अपने एक मक़्ते (ग़ज़ल का अंतिम शे'र जिसमें शायर का तख़ल्लुस भी होता है) में रसा लिखते हैं–

'रसा की है तलाशे यार में यह दश्त पैमाई
कि मिस्ले शीशा मेरे पाँव के छाले झलकते हैं।'

रसा की यह दश्त (मरुस्थल) पैमाई (भ्रमण) यार की तलाश में है तथा शीशे की मिस्ल (भाँति) उसके पाँव के छाले झलकते हैं। यहाँ 'यार' का संकेत ईश्वर से भी है।

भारतेन्दु की शायरी में श्रृंगार रस का पुट भी दिखाई पड़ता है तथा मिर्ज़ा ग़ालिब की भाँति वह अपनी प्रेमिका से छेड़-छाड़ भी करते हैं। उदाहरणार्थ रसा का यह शे'र प्रेयसी देखिए–

'न बोसा लेने देते हैं, न लगते हैं गले मेरे
अभी कम उम्र हैं, हर बात पर मुझ से झिझकते हैं।'

शायर की प्रेयसी न तो बोसा लेने देती है और न ही गले लगती है क्योंकि वह अभी कमउम्र (अल्पायु) है तथा हर बात पर झिझकती है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र श्रीकृष्ण के भक्त थे, अतः उन्होंने उर्दू शायरी में इस भक्ति को व्यक्त किया है। रसा के कृष्णमय इन दो शे'रों पर विचार कीजिए–

'जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है
उसी का सब है जलवा जो जहाँ पर आशकारा है

तेरा दम भरते हैं हिन्दू अगर नाक़ूस बजता है
तुझे ही शेख़ ने प्यारे अज़ाँ देकर पुकारा है।'

रसा कहते हैं कि कृष्ण जिधर देखो वहाँ मौजूद हैं, उन्हीं का जलवा (रूप का दर्शन) जहाँ (विश्व) पर आशकारा (प्रकट) है। इस शे'र में शायर 'श्रीमद्भागवत गीता' से प्रभावित लगते हैं जबकि दूसरे शे'र में वह श्रीकृष्ण के विराट रूप की ओर इंगित करते हुए कहते हैं कि यदि हिन्दू नाकूस (शंख) बजाते हैं तो वे श्रीकृष्ण का ही दम भरते हैं और इसी तरह शेख़ (मुस्लिम) भी अज़ाँ (बाँग) देकर कृष्ण को ही पुकारता है। शायर के इन भक्तिपूर्ण शे'रों को पढ़कर हमें कृष्ण भक्त उर्दू कवि मौलवी नज़ीर अकबराबादी की नज़्में याद आ जाती हैं।

यहाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'रसा' की उर्दू शायरी का उल्लेख करते हुए यह बताना भी प्रासंगिक होगा कि हिन्दी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक भूमिका निभाने वाले भारतेन्दु उर्दू भाषा के पत्रकार भी रहे हैं तथा उन्होंने 'क़ासिद' नाम से उर्दू का एक पत्र भी निकाला था। अतः उर्दू भाषा के लिए उनके योगदान की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। भारतेन्दु को उर्दूभाषियों ने हिन्दी वाला समझकर उनकी उर्दू सेवाओं को नज़रअंदाज़ किया तो हिन्दी भाषियों ने उनके उर्दू गद्य और पद्य की उपेक्षा की। इसलिए हिन्दी व उर्दू के शोधकर्ताओं को भाषाई संकीर्णता से ऊपर उठकर भारतेन्दु की उर्दू सेवाओं पर भी कार्य करना चाहिए। ❑

जन्मदिवस विशेष

विजय तेंडुलकर
विद्रोही नाटककार

विजय तेंडुलकर ने 'रंगायन' नाम से अपना नाट्य समूह बनाया। इस समूह के लिए विभिन्न नाट्य हस्तियों ने उन्हें सहयोग दिया जिनमें सुलभा देशपाण्डे, श्रीराम लागू, मोहन अगाशे जैसे समर्पित कलाकार शामिल थे। विजय तेंडुलकर सिर्फ़ नाटक विधा तक ही सीमित नहीं रहे। जब वह लेखनी पकड़ते तो अपने विचारों को गुनते-बुनते कहानियाँ भी लिख लेते। कहानियों को रचते-रचते उनकी क़लम से 'कादम्बरी' जैसा उपन्यास भी साहित्य जगत में आया।

साहित्य की विभिन्न विधाओं में उपन्यास, कहानी, कविता, व्यंग्य, आलोचना आदि के साथ ही 'नाटक' भी एक प्रमुख विधा है। भारतीय रंगमंच का इतिहास देखें तो आदिकाल में भी नाटक लिखे जाते रहे हैं। आधुनिक काल की बात करें तो आज पूरी दुनिया में लाखों नाट्य समूह हैं जो विभिन्न संस्कृति और पौराणिक कथाओं को नाटक में ढालकर स्थानीय भाषाओं में मंच पर उतरते हैं। हमारे देश में प्रत्येक गाँव, क़स्बे और शहर में नाटकों की प्रस्तुतियाँ आज भी होती रहती हैं और बहुत-से नए कलाकार उभरते हुए दिखाई देते हैं।

भारतीय साहित्य की विधा 'नाटक' के लिए विजय तेंडुलकर का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उनका जन्म 6 जनवरी, 1928 को महाराष्ट्र के कोल्हापुर में हुआ था। हालाँकि पढ़ने-लिखने का माहौल उन्हें घर से ही मिल गया था क्योंकि उनके पिता का प्रकाशन व्यवसाय था। बताया जाता है कि मात्र छह वर्ष की उम्र में उन्होंने एक कहानी लिखकर अपने परिवार को आश्चर्य में डाल दिया था। ग्यारह वर्ष की उम्र में विजय तेंडुलकर ने न केवल एक नाटक लिखा बल्कि उसमें अभिनय भी किया और स्वयं ने ही उसे निर्देशित भी किया। अपनी किशोरावस्था में ही पढ़ाई-लिखाई को छोड़ वह 'भारत छोड़ो आंदोलन' में शामिल हो गए थे। चूँकि वह लिखने का अभ्यास करते रहते थे तो स्वतन्त्रता के लिए जोश भरे लेख लिखने लगे जिन्हें अख़बारों ने प्रमुखता से प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया।

मुकेश पोपली
ई-मेल : swarangan38@gmail.com

अख़बारों में लिखने और प्रकाशन से जुड़े अपने पिता से प्राप्त अनुभवों को उन्होंने साहित्यिक यात्रा में ढालने का निर्णय लिया और नाटक विधा में उतर गए। रंगमंच के लिए प्रारम्भ में लिखे उनके नाटकों को कोई ख़ास प्रसिद्धि नहीं मिली तो वे निराश हो गए। फिर भी नाटक उनके हृदय में हिलोरें मारता रहा और 1956 में 'श्रीमंत टक' नाटक लिखा। यह एक आधुनिक नाटक था, रूढ़िवादी ताक़तें इसके विरोध में उतरीं लेकिन अंततः विजय तेंडुलकर के इस नाटक ने बेहद सफलता प्राप्त की।

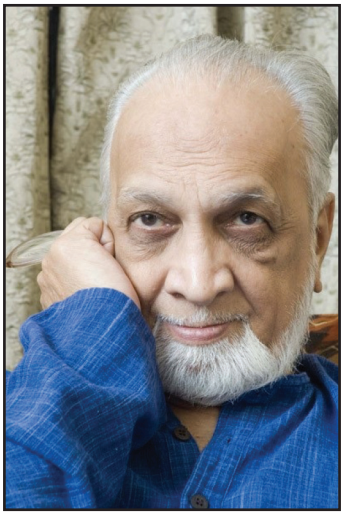

विजय तेंडुलकर
(6 जनवरी, 1928 - 19 मई, 2008)

विजय तेंडुलकर ने 'रंगायन' नाम से अपना नाट्य समूह बनाया। इस समूह के लिए विभिन्न नाट्य हस्तियों ने उन्हें सहयोग दिया जिनमें सुलभा देशपाण्डे, श्रीराम लागू, मोहन अगाशे जैसे समर्पित कलाकार शामिल थे। सिद्धहस्त नाटककार और रंगमंच के कलाकार विजय तेंडुलकर मराठी भाषा के प्रमुख साहित्यकार बनते चले गए। उनके ढेर सारे नाटकों में शामिल 'घासीराम कोतवाल', 'सखाराम बाइंडर', 'शान्तता! कोर्ट चालू आहे' ने उनकी छवि में चार चाँद लगाने का कार्य किया। ये सभी नाटक विश्वस्तरीय हैं और इन्हें आज भी मंच पर खेला जाता है।

विजय तेंडुलकर के नाटकों में कथानक भी अलग-अलग होता था जैसे 'गिद्धे-गिद्ध' में परिवारों की टूटन और साम्प्रदायिक के साथ-साथ राजनैतिक विषय उठाया गया और समाज में इसके प्रभाव पर चिन्ता व्यक्त की गई। इसी प्रकार 'शान्तता! कोर्ट चालू आहे' अर्थात् 'ख़ामोश! अदालत जारी है' क्रान्तिकारी नाटक के रूप में सामने आया। इस नाटक के प्रथम निर्देशक अरविंद देशपाण्डे ने एक जगह लिखा है कि समूचे नाटक में भले ही लीला बेणारे की त्रासदी को हलके-फुलके ढंग से प्रहसन शैली में प्रस्तुत किया गया हो लेकिन इस त्रासदी की अंतःधारा कमाल की तरल और गंभीर है। तीन अंकों में लिखा यह नाटक आज भी रोंगटे खड़े कर देता है।

'घासीराम कोतवाल' नाटक के बारे में विजय तेंडुलकर ने एक बेहद तीखी टिप्पणी की थी, "मैं बहुत बेचैन हूँ। बार-बार मारे जाने के बाद मेरे नाटकों का 'घासीराम' फिर-फिर ज़िन्दा होते हुए दिखता है और दिल्ली से गली तक के 'नाना' उसके आश्रयदाता।" उनका कहना था कि कोई भी दर्शक नाटककार का नहीं, स्वयं के मन का नाटक सामने के नाटक में देखता है। इसी पर उसे किसी नाटक का पसन्द या नापसन्द होना अवलम्बित होता है। उसी पर नाटक का आकलन तय होता है। नाटक अंततः दर्शकों के लिए और उनका होता है।

'सखाराम बाइंडर' दर्शकों को इसलिए बेहद पसन्द आया क्योंकि उसमें एक द्वंद्व नज़र आता है। जब कोई अपनी नैतिकता ताक पर रख देता है तो मानव मूल्यों का पतन शुरू हो जाता है। इस प्रकार की छोटी-सी घटना भी जीवन को निराशा से भर देती है। फिर भी जीत अंततः नैतिक मूल्यों की ही होती है।

विजय तेंडुलकर के एक और नाटक 'जाति ही पूछो साधु की' के एक दृश्य का संवाद देखिए जो महीपति अपने अभिनंदन की बात समझाते हुए दर्शकों से कहता है, "जाति मेरी-जाति कौन-सी? सच तो यह है कि इस जाति को भुलाने के लिए ही रात-दिन एक करके डिग्री हासिल की। माथे पर भले ही डिग्री की सफ़ेदपोश मोहर लग गई हो लेकिन पीठ पर चस्पाँ जाति का रबड़ स्टाम्प नहीं हट सका...।"

विजय तेंडुलकर ने उपरोक्त वर्णित नाटकों के अतिरिक्त पचास से भी अधिक नाटक रचे जिनमें बहुत-से नाटकों का हिन्दी मंचन भी हो चुका है। 'कन्यादान', 'कमला', 'भूत' आदि अनेक नाटकों की रचना में उन्होंने यह भी हमेशा ख़्याल रखा कि पाठकों और दर्शकों के हृदय में सकारात्मकता प्रवेश करे। नाटकों के साथ ही उन्होंने अनेक बाल नाटक और एकांकी भी लिखे।

विजय तेंडुलकर सिर्फ़ नाटक विधा तक ही सीमित नहीं रहे। जब वह लेखनी पकड़ते तो अपने विचारों को गुनते-बुनते कहानियाँ भी लिख लेते। कहानियों को रचते-रचते उनकी क़लम से 'कादम्बरी' जैसा उपन्यास भी साहित्य जगत में आया। इस उपन्यास के खण्ड एक में वह लिखते हैं, "सिनेमा देखने की भी एक उम्र होती है। उस उम्र में सिनेमा के नाच-गाने, नायक-नायिका, उनका प्रेम, इसके अतिरिक्त

'घासीराम कोतवाल' का दृश्य

कुछ और नज़र नहीं आता।" मूल मराठी उपन्यास का हिन्दी अनूदित संस्करण भी पाठकों ने हाथोंहाथ लिया।

विजय तेंडुलकर के पास फ़िल्मों के ऑफ़र भी आए। उन्होंने लगभग बीस फ़िल्मों के लिए लेखन-कार्य किया। इस कड़ी में 'निशान्त' (1975) की पटकथा विजय तेंडुलकर ने लिखी। निर्देशक श्याम बेनेगल की 'निशान्त' में गिरीश कर्नाड, शबाना आज़मी, अनंत नाग, अमरीश पुरी, स्मिता पाटिल, नसीरुद्दीन शाह, मोहन अगाशे जैसे अनेक थिएटर के कलाकार थे। यहाँ तक कि 'निशान्त' के संवाद-लेखक सत्यदेव दुबे ने भी इस फ़िल्म में अभिनय किया। 'निशान्त' वो फ़िल्म थी जिसे कान फ़िल्मोत्सव में नामित किया गया था और राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कारों में हिन्दी के लिए सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म घोषित किया गया था। 'निशान्त' ने अनेक अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों के लिए नामांकन पाया और कुछ पुरस्कार भी जीते। बंगाल फ़िल्म पत्रकारिता संघ ने 'निशान्त' के लिए श्याम बेनेगल (निर्देशक) और विजय तेंडुलकर (पटकथा) का सम्मान किया।

इसी क्रम में गोविन्द निहलानी द्वारा निर्देशित फ़िल्म 'आक्रोश' की भी चर्चा आवश्यक है। इसे विजय तेंडुलकर ने लिखा था। इस फ़िल्म में नसीरुद्दीन शाह और स्मिता पाटिल के साथ ओम पुरी, अमरीश पुरी, रीमा लागू, अरविंद देशपाण्डे, मोहन अगाशे, नाना पलसीकर जैसे कलाकार थे। 'आक्रोश' ने राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार तो जीता ही, साथ ही फ़िल्मफ़ेयर अकादमी के सात नामांकन प्राप्त किए और उनमें से छह श्रेणियों में इस फ़िल्म को पुरस्कृत किया गया। उन्हें सर्वश्रेष्ठ कहानी और सर्वश्रेष्ठ पटकथा के लिए सम्मानित किया गया।

वर्ष 1983 में 'अर्द्धसत्य' फ़िल्म के निर्देशक भी गोविन्द निहलानी थे। 'अर्धसत्य' के लिए विजय तेंडुलकर ने पटकथा भी लिखी और संवाद भी। ओम

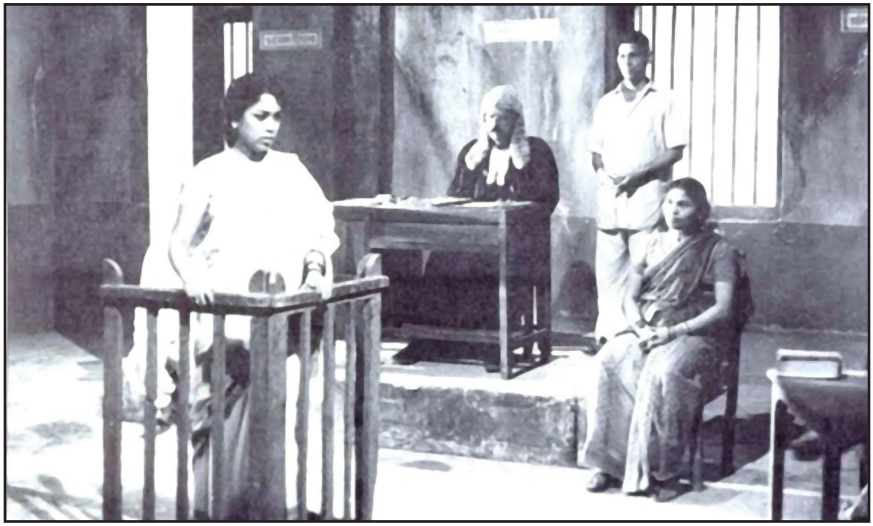

'ख़ामोश! अदालत जारी है' का दृश्य

'सखाराम बाइंडर' का दृश्य

पुरी, स्मिता पाटिल, नसीरुद्दीन शाह, अमरीश पुरी के साथ ही इस फ़िल्म में शफ़ी इनामदार और सदाशिव अमरापुरकर जैसे कलाकार भी दिखाई दिए। 'अर्द्धसत्य' माफ़िया और पुलिस के सम्बन्धों पर बनाई गई एक फ़िल्म रही जिसके लिए ओम पुरी को अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म समारोह और राष्ट्रीय फ़िल्म समारोह में सर्वश्रेष्ठ अभिनेता के पुरस्कार से नवाज़ा गया। फ़िल्मफ़ेयर अकादमी के लिए इस फ़िल्म को सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म (निर्माता मनमोहन शेट्टी और प्रदीप उप्पूर) चुना गया, गोविन्द निहलानी को सर्वश्रेष्ठ निर्देशक, सदाशिव अमरापुरकर को सर्वश्रेष्ठ सहायक अभिनेता, एस.डी. पनवालकर को सर्वश्रेष्ठ कहानी और विजय तेंडुलकर को सर्वश्रेष्ठ पटकथाकार के लिए सम्मानित किया गया।

भारतीय दूरदर्शन की अभिनेत्री प्रिया तेंडुलकर उनकी सुपुत्री थीं जिन्होंने 'रजनी' जैसा धारावाहिक बनाकर घर-घर में प्रसिद्धि पाई। विजय तेंडुलकर ने प्रिया को लेकर 'स्वयंसिद्धा' धारावाहिक लिखा। उन्होंने न केवल अपनी पुस्तकों का अनुवाद किया बल्कि विख्यात साहित्यकार मोहन राकेश की पुस्तक 'आधे अधूरे', गिरीश कर्नाड की 'तुग़लक' और अन्य अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों का मराठी में अनुवाद किया।

विजय तेंडुलकर को जहाँ 1984 में पद्मभूषण से सम्मानित किया गया, वहीं 1970 में उन्हें 'संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार' प्रदान किया गया। 1993 में उन्हें 'सरस्वती सम्मान', 1999 में 'कालिदास सम्मान', 2001 में 'कथा चूड़ामणि सम्मान' प्रदान किया गया। वर्ष 1998 में उन्हें संगीत नाटक अकादमी के 'लाइफ़टाइम सहयोग' के लिए नवाज़ा गया और 'रत्न सदस्य' की फ़ैलोशिप प्रदान की गई। विजय तेंडुलकर की तमाम रचनाओं में वह सीधे समाज से जुड़े रहते थे। उन्होंने 19 मई, 2008 को पुणे में अंतिम साँस ली। ❑

तनहाई

कमरे के एक कोने में
बेड पर
अकेला पड़ा हूँ
देख रहा हूँ
सूनी दीवारों को -
जो कभी
बहुत सुहावनी लगती थीं
दीवारों पर टँगी
बेजान तस्वीरों को -
जो कभी बातें किया करती थीं
शोकेस में सजे
स्मृति चिह्नों, मान पत्रों को -
जिन्हें कभी बहुत उत्साह से
संजोया गया था
बन्द खिड़कियों को -
जो तब खुलती थीं
जब कोई दरवाज़े पर
दस्तक देता था
या गली से कोई
बारात गुज़रती थी
या कोई शवयात्रा
खिड़कियों पर टँगे रंगीन परदों को -
जो बार-बार बदले जाते थे
अक्सर मेहमानों के आते रहने से
फिर इन दीवारों, तस्वीरों,
स्मृति चिह्नों,
खिड़कियों,
परदों को देखते-देखते
होठों पर तैरने लगती है
एक तीखी मुस्कान
और मैं बन्द कर लेता हूँ
आँखें...।

धर्मेन्द्र गुप्त 'साहिल'
ई-मेल : dharmendraguptsahil@gmail.com

मेरी डायरी

मेरी डायरी मत पढ़ना तुम
मेरी डायरी में तुम्हें
शब्द नहीं मिलेंगे
मिलेंगे
काँच के टुकड़े
बुझी हुई आग की राख
कुछ सूखे पत्ते
फूलों की
बिखरी हुई पंखुड़ियाँ
और कुछ
बेरंग तस्वीरें। ❑

सुरेन्द्र राजन का जन्म 19 जुलाई, 1939 में मध्य प्रदेश के अजयगढ़, पन्ना ज़िले में हुआ। ये वो समय था जब देश रियासतों में बँटा था और अंग्रेज़ों की हुकूमत थी। उनके दादा अजयगढ़ के ज़मींदार थे, उनके पास दो गाँवों की ज़मींदारी थी। बचपन राजा-महाराजाओं को देखते गुज़रा। उस समय अजयगढ़ के राजा पुण्यप्रताप सिंह उनके पिता के क़रीबी थे। उनका आना-जाना उनकी हवेली में लगा रहता था। राजा कोलकाता से पढ़े हुए थे। वो साहित्य, कला से जुड़े थे।

सुरेन्द्र राजन

गाँधी के चरित्र को जीवन्त करते कलाकार

मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस. फ़िल्म में अस्पताल के सफ़ाई कर्मचारी मक़सूद को संजय दत्त की जादू की झप्पी देने वाला दृश्य आप सभी को याद होगा। ये हैं सुरेन्द्र राजन। कई फ़िल्मों में इन्हें देखा होगा। ख़ासतौर पर महात्मा गाँधी की भूमिका में। गाँधीजी की भूमिका के लिए पूरे बॉलीवुड में इनसे बेहतर कोई और कलाकार नहीं है। क़द-काठी, चेहरा और यहाँ तक कि उनकी आवाज़ भी बहुत-कुछ गाँधीजी से मिलती-जुलती है। यही कारण है कि सुरेन्द्र राजन ने हिन्दी, अंग्रेज़ी, रूसी भाषा में बनी लगभग 15 फ़िल्मों में महात्मा गाँधी का किरदार अभिनीत किया है। हाल ही में निर्देशक मनीष किशोर की वेब सीरीज़ 'घोस्ट ऑफ़ गाँधी' में सुरेन्द्र राजन ने एक बार फिर से गाँधी की भूमिका निभाई है।

सुरेन्द्र राजन उच्च कोटि के कलाकार हैं। क़रीब सत्तर से अधिक फ़िल्मों से छोटी-बड़ी भूमिका से बड़े परदे पर अपनी पहचान बनाने वाले सुरेन्द्र राजन तूलिका चलाते और फ़ोटो क्लिक करते-करते एक अभिनेता भी बन जाएँगे, उन्होंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था। 'परिणती' के आर्ट डायरेक्टर, वर्ल्ड लाइफ़ फ़ोटोग्राफ़ी के दीवाने लगभग सोलह सालों तक एक कार को ही आशियाना बनाकर यायावर की ज़िन्दगी जीने वाले इस कलाकार ने सालों से अख़बार नहीं पढ़ा है। टी.वी. व इंटरनेट से दूर रहने वाले इस कलाकार को आज भी काम की कमी नहीं है।

सुधा रानी तैलंग
ई-मेल : sudhatailang76@gmail.com

सुरेन्द्र राजन, महज़ एक कलाकार ही नहीं, बल्कि विश्व के जाने-माने वाइल्ड लाइफ़ फ़ोटोग्रॉफ़र भी हैं। बेहतरीन पेंटर हैं। मूर्तिकला में भी माहिर हैं। इस अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अभिनेता व कलाकार से मेरी मुलाक़ात उनके गृहनगर पन्ना ज़िले की एक छोटी-सी तहसील अजयगढ़ में हुई। दाढ़ी से भरा चेहरा, चश्मे से झाँकती अनुभवी आँखें, बेहद सरल, सहज गंभीर व्यक्तित्व वाले चित्रकार, फ़ोटोग्राफ़र व कलाकार सुरेन्द्र राजन के पैतृक घर में चारों ओर पेड़-पौधे, सुवासित बेल लताओं से आच्छादित आँगन के बीच छोटा-सा कुआँ और बेहद कलात्मक तरीक़े से लकड़ियों से बना कमरा एक कलाकार की सृजनशीलता को दर्शाता है। प्रकृति के सुरम्य वातावरण में उनसे हुई मुलाक़ात में उनके जीवन, अनुभवों और कला यात्रा से जुड़े अनमोल अनछुए पलों से रूबरू होने का मौक़ा मिला।

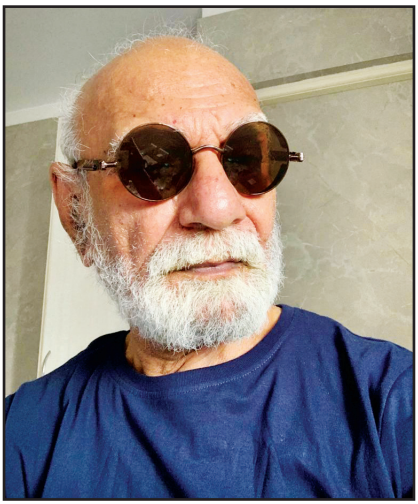

सुरेन्द्र राजन

सुरेन्द्र राजन का जन्म 1939 में मध्य प्रदेश के अजयगढ़, पन्ना ज़िले में हुआ। ये वो समय था जब देश रियासतों में बँटा था और अंग्रेज़ों की हुकूमत थी। उनके दादा अजयगढ़ के ज़मींदार थे, उनके पास दो गाँवों की ज़मींदारी थी। बचपन राजा-महाराजाओं को देखते गुज़रा। उस समय अजयगढ़ के राजा पुण्यप्रताप सिंह उनके पिता के क़रीबी थे। उनका आना-जाना उनकी हवेली में लगा रहता था। राजा कोलकाता से पढ़े हुए थे। वो साहित्य, कला से जुड़े थे।

उस समय आम जनता के लिए ये एक काल्पनिक चीज़ थी, लेकिन राजा के पास फ़ोटोग्राफ़ी के लिए कैमरा, म्यूज़िक सिस्टम और हर वो चीज़ थी, जो आम लोगों को उस समय देखने को भी नसीब नहीं होती थी। राजा जब भी फ़ोटोग्राफ़ी करते तो सुरेन्द्र राजन को भी सिखाते। वहीं से उनमें फ़ोटोग्राफ़ी का हुनर आया। उस दौर में रेडियो सिर्फ़ राजा के महल में हुआ करता था और हमारे घर में। जब देश आज़ाद हुआ तो गाँव के लोगों ने उनके घर में भीड़ लगाकर आज़ादी की सुकून देने वाली ख़बर सुनी।

पिता ने कृषि की पढ़ाई के लिए रीवा में दाख़िला करवाया पर बचपन से ही सुरेन्द्र राजन को कला में दिलचस्पी थी। 'धर्मयुग' पत्रिका से सुधीर रंजन के बारे में पता चला, जो पेंटर, मूर्तिकार थे और आर्ट्स कॉलेज, लखनऊ के प्रिंसिपल भी। उनसे मिलने पर उन्हें पता चला कि आर्ट्स कॉलेज जैसी भी कोई जगह होती है। उनसे प्रेरित होकर जब पिता के सामने आर्ट्स कॉलेज में दाख़िला लेने की बात रखी तो वे हैरान हो गए। उन्होंने कहा कि हमने लिपिक, अध्यापक, डॉक्टर देखे हैं, आर्टिस्ट क्या होता है? ये कोई काम नहीं होता! वो जानते थे कि उनके पिता नहीं मानेंगे। वो ख़ुद आर्ट्स कॉलेज गए और अपने

दाख़िले की बात की। आर्ट्स कॉलेज में पढ़ते हुए कई बड़े अवॉर्ड मिले। पढ़ाई पूरी करने के बाद सुरेन्द्र राजन लखनऊ से दिल्ली पहुँच गए। दिल्ली में रहते हुए कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी में हिस्सा लिया। सन् 1983 के आस-पास उनके पास एक गाड़ी थी तो उसकी पीछे की सीट तोड़कर उसमें सामान रखकर निकल पड़े। तब से लेकर आज तक कभी एक जगह नहीं रुके। दुनिया देखने के लिए शहर बदले और काम भी बदला।

पेंटिंग, फ़ोटोग्राफ़ी, म्यूज़िक कम्पोज़िंग में अपनी पहचान बनाते-बनाते अचानक अभिनय से जुड़ने वाले इस कलाकार ने अभिनय का कोई प्रशिक्षण नहीं लिया, न ही अभिनय में रुचि थी। उनके एक मित्र विजयदान देथा को 'परिणति' फ़िल्म के लिए आर्ट डायरेक्टर की ज़रूरत थी। आर्ट डायरेक्ट करते-करते बीच में ही उन्हें एक्टिंग का मौक़ा भी मिल गया। उस फ़िल्म में उन्हें एक स्ट्रीट सिंगर भोंपा का रोल मिला या यूँ कहें कि उनसे ज़बरदस्ती वो रोल करवाया गया।

इसके बाद बाँधवगढ़ नेशनल पार्क में वाइल्ड लाइफ़ फ़ोटोग्राफ़ी करने के दौरान उनके पास लेखिका और समाजसेवी अरुन्धति रॉय का फ़ोन आया। उस समय लंदन द्वारा उनकी कहानी पर अंग्रेज़ी फ़िल्म बनाई जा रही थी। अरुन्धति ने उन्हें फ़ोन कर 'इलेक्ट्रिक मून' में जगदीश जॉनसन का किरदार निभाने को कहा। वो फ़िल्म बनी और उसे कई अवॉर्ड मिले। अख़बार में ख़ूब छपा कि सुरेन्द्र जितने अच्छे पेंटर और वाइल्ड लाइफ़ फ़ोटोग्राफ़र हैं, उतने ही अच्छे एक्टर भी हैं। अरुन्धति राय के कहने पर उन्होंने 27-28 सालों बाद दाढ़ी कटवाई। जब एक पत्रिका में उनकी क्लीन शेव तस्वीर छपी तो लोगों ने उनकी तुलना गाँधीजी से करनी शुरू कर दी, क्योंकि उनकी छवि गाँधीजी से मिलती थी।

सुरेन्द्र राजन जब नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा में कैमरा विभाग के प्रमुख थे, उन दिनों आज़ादी की 50वीं वर्षगाँठ पर मुम्बई के अगस्त क्रान्ति मैदान में होने वाले लाइव शो के लिए बामन केन्द्रे ने उनको दिल्ली से गाँधी की भूमिका के लिए बुलवा लिया और तब से गाँधी के किरदार के साथ सिलसिला शुरू हुआ। इसके बाद वहाँ एक के बाद एक इतना काम मिला कि पन्द्रह सालों तक मुम्बई में ही रुकना पड़ा। सबसे पहले सन् 2002 में 'लीजेंड ऑफ़ भगत सिंह' में गाँधी की भूमिका

गाँधी के किरदार में सुरेन्द्र राजन

मिली। अभी तक हिन्दी, अंग्रेज़ी, मलयालम और बाँगला भाषा में बनी पन्द्रह फ़िल्मों में उन्होंने गाँधी के जीवन को जिया है। 2023 में प्रदर्शित खार शिरीश खेमरिया की फ़िल्म 'हू एम आई' अंतिम फ़िल्म कही जा सकती है। उनकी यादगार फ़िल्में हैं 'मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस', 'लगे रहो मुन्ना भाई', 'नेताजी सुभाष चन्द्र बोस', 'लीजेंड ऑफ़ भगत सिंह', 'पहेली', 'फँस गए रे ओबामा', 'मर्डर टू', 'बच्चन पाण्डे', 'वीर सावरकर' आदि।

गाँधी की भूमिका के अलावा 'मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस.' में मक़सूद उनका पसन्दीदा किरदार है। इस फ़िल्म से जुड़े यादगार लम्हों के बारे में पूछने पर उन्होंने बताया कि 'मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस.' फ़िल्म के प्रीमियर शो के बाद सुनील दत्त ने उनके अभिनय की प्रशंसा की। वह उनके जीवन का यादगार लम्हा है। बालीवुड में सुरेन्द्र राजन ही एकमात्र ऐसे कलाकार हैं जिन्हें ख़ुद अपनी भी फ़िल्में देखना पसन्द नहीं है। 1970 के बाद से सिर्फ़ 'मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस.' देखी है, जो प्रोडक्शन के ही लोगों ने ज़बरदस्ती दिखा दी थी।

गाँधी के किरदार को जीने के लिए की गई तैयारी के बारे में सुरेन्द्र राजन का कहना है कि फ़िल्मों में गाँधी के चरित्र को साकार करने के लिए उन्होंने उनकी डाक्यूमेन्ट्री फ़िल्में देखीं। अपने में गाँधीजी के चरित्र को पूरा ढालने की कोशिश के चलते शूटिंग के दौरान वे अपने-आपको भूल जाते हैं। कई बार तो उन्हें ऐसा महसूस होता है कि जैसे वे ख़ुद गाँधी हैं। ये मन की भावनाएँ ही बापू की भूमिका निभाने में मददगार सिद्ध हुईं पर उनका मानना है कि फ़िल्मों में गाँधी के चरित्र को यर्थाथ रूप में नहीं दिखाया जाता।

बतौर एक कलाकार वो गाँधीजी की किस विचारधारा से प्रभावित हैं? इस बारे में कहते हैं कि उनका जन्म आज़ादी से पहले हुआ था, ऐसे में गाँधी का उनके जीवन में पूरा प्रभाव रहा है। उनको ख़ूब पढ़ा भी है। गाँधीजी लोक नायक हैं। उनका प्रभाव किसी-न-किसी रूप में पूरे देश में मौजूद है।

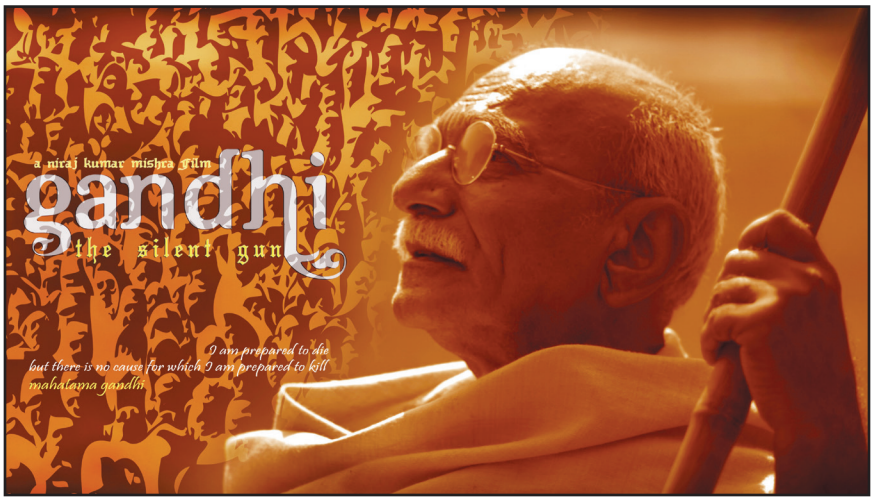

'गाँधी द साइलेंट गन' फ़िल्म में गाँधी के किरदार में सुरेन्द्र राजन (फ़िल्म का पोस्टर)

श्याम बेनेगल की फ़िल्म 'सुभाष चन्द्र बोस : एक विस्मृत नायक' में सुभाष चन्द्र बोस और नेहरूजी से विचार-विमर्श करते हुए सुरेन्द्र राजन (गाँधी के किरदार में)

सादा व सरल जीवन गाँधी और कबीर के जीवन दर्शन से ही उनके अवचेतन मन में सूक्ष्म रूप से पहले ही कहीं-न-कहीं मौजूद रहा। इसीलिए उन्होंने सोच लिया था कि वही चीज़ें इकट्ठी करूँगा जो अपने साथ वो ऊपर ले जा सकें।

सुरेन्द्रजी अच्छा-ख़ासा कैरियर छोड़कर पहाड़ों पर क्यों चले गए? मेरे पूछने पर ये ही जवाब था, "जीवन की सच्चाई का आभास मुझे पहले ही हो गया था। इसीलिए मैंने 40 की उम्र में ही सोच लिया था कि 75 साल की उम्र के बाद पहाड़ों में जाकर प्रकृति के बीच ही अपना आशियाना बनाऊँगा।" रूद्र प्रयाग के गढ़वाल के पास खुन्नु गाँव में एक फ़ौजी का मकान किराए पर लेकर वो कई बरसों तक वहीं रहे।

सुरेन्द्र राजन कहते हैं कि मेरे पास पैसे ज़्यादा होते हैं, ज़रूरतें कम। एक बार फ़िल्म में काम करने से इतने पैसे मिले कि वो मॉरिशस घूमने निकल गए। मॉरिशस से वापस आकर अपने इलाज के लिए कोयम्बटूर गए। वहाँ इतना अच्छा लगा कि उन्होंने वहीं बसने का इरादा कर लिया। वहाँ का मौसम, रहन-सहन और लोग उन्हें काफ़ी पसन्द आए। उनको वहाँ की भाषा नहीं आती पर हाव-भाव से एक दूजे की भावनाओं को समझा जा सकता है। यहाँ बेशक वह लोगों की भाषा, बोली नहीं समझ पाते हैं पर अपने विचारों का आदान-प्रदान बख़ूबी कर लेते हैं। न घर, न गाड़ी, न सुविधा का कोई सामान, यहाँ तक कि घर भी नहीं बसाया। मिज़ाज इतना मस्तमौला कि कभी एक जगह नहीं ठहरते। पूरी दुनिया घूमते हैं, लोगों से मिलते हैं। पैसा होने पर भी अपने लिए कभी कुछ नहीं जुटाया। जैसे पक्षियों के लिए कोई सरहद, सीमा नहीं होती, वैसे ही सुरेन्द्र राजन भी किसी देश, राज्य और शहर में बँध कर नहीं रहे।

सुरेन्द्र राजन बेहद संवेदनशील कलाकार हैं। अख़बार, टीवी व फ़िल्मों से दूर रहते हैं। उनका कहना है कि अख़बार,

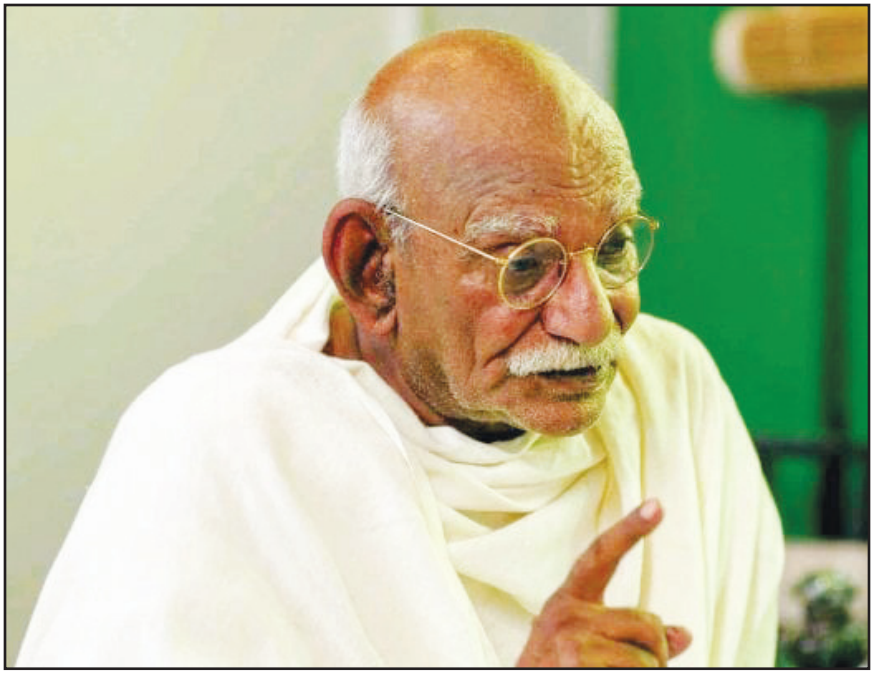

'वीर सावरकर' फ़िल्म में

टी.वी. के समाचार मन को विचलित कर देते हैं। उनसे दूर रहकर प्रकृति, पहाड़, नदियों व वन्य प्राणियों के बीच ही वे ख़ुशी और सकून तलाश करते हैं।

कोयम्बटूर में सुरेन्द्र राजन किराए के एक कमरे में रहते हैं। एकांत में पेड़-पौधों और जानवरों के साथ प्रकृति की सुन्दरता को निहारना, चित्रकारी, फ़ोटोग्राफ़ी और संगीत सुनना बस अब यही उनके शौक हैं, दिनचर्या है। लगभग 85 वर्ष की उम्र में अपने जीवन के आख़िरी पड़ाव में सकून की तलाश में सुरेन्द्र राजन अभिनय की दुनिया को छोड़कर कोयम्बटूर के शान्त, निश्चल प्राकृतिक वातावरण में अपने सपनों के रंगों को साकार करने की कोशिश में हैं। कुछ फ़ोटोग्राफ़ी के ज़रिए तो कुछ पेंटिंग के ज़रिए। उन्हें न धनी बनने की ख़्वाहिश है, न ही प्रसिद्धि की लालसा। उनकी ज़रूरतें बेहद कम हैं।

इन्सानियत को ही अपनी जाति, धर्म मानने वाले इस बहुमुखी प्रतिभा के धनी कलाकार का मानना है कि कला और दर्शन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक कलाकार की कला के प्रति समर्पण उसे उसी दुनिया में ले जाता है और वो कुछ समय के लिए अपने-आप को भी भूल जाता हैं। जब वाइल्ड लाइफ़ फ़ोटोग्राफ़ी करते हैं तो प्रकृति, जंगल, पहाड़, झरने, नदियाँ, बादल और वन्य प्राणी बस इन्हीं में खो जाते हैं। बादलों को देखते हैं तो अपने-आप को उनका ही हिस्सा समझने लगते हैं। ये ही तो एक कलाकार का सूफ़ीयाना और दार्शनिक अंदाज़ है! ❑

एकमुश्त

बा भी कोई कम नहीं थी। छोटू की नानी थी। कुछ और सूझता ही नहीं सिवाय इसके कि छोटू का ठीक से ध्यान कैसे रखे। बा का यह जुनून अपने चरम पर, उधर बा को इग्नोर करने का चरम छोटू के सिर पर सवार। दोनों एक-दूसरे को टक्कर देते रहते। बाज़ी मारता छोटू।

अब वह दस साल का और बा पैंसठ की हो चली थी। उसके न सुनने पर बा कुड़मुड़ाती। ख़ुद को समझाती, "पीढ़ी का अंतर। उम्र का अंतर। सोच का अंतर। पढ़ाई का अंतर। तकनीक का अंतर। कितने तो अंतर थे! ज़माने भर के। तमाम सारे।"

अभी दो-तीन मिनट का रास्ता ही तय किया था कि अचानक मौसम ने करवट बदल ली। बादल फट पड़े। इस क़दर कि तेज़ हवा के साथ घनघोर बारिश शुरू हो गई। घर से निकलते समय बा को याद था कि छतरी ले ले लेकिन ताला लगाने और जल्दी पहुँचने के प्रयास में भूल गई। ऐसी बारिश और हवा में छतरी भी उड़ने के लिए बेताब हो जाती। बादलों ने झमाझम बरसने की ठान ली थी। कुछ ऐसे, जैसे इंतज़ार कर रहे हों कि कब बा घर से निकले और कब पूरे आवेग के साथ हमला करें।

छतरी लेने वापस घर गई तो देर हो जाएगी। वैसे भी भीग तो गई थी। अब बीच रास्ते में थी। न इधर, न उधर। माथे और बालों पर प्रहार करता पानी बा के चश्मे को भी निशाना बनाता रहा। सिर को ऐसा लग रहा था जैसे नायग्रा फ़ॉल्स के नीचे खड़ा कर दिया हो। और पैरों को किसी उथले तालाब की सैर करने का अहसास हो रहा था।

पानी की परत-दर-परत लगातार शरीर को बींध रही थी। कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। जूते मन-मन भारी हो चले थे। गीले कपड़े और बरसता पानी। चश्मा निकाल कर साफ़ भी कैसे करती। आँखों पर लगा होने पर भी नहीं दिख रहा था, खोलने पर भी नहीं। लगातार पानी के बहते रेले में डूबता चश्मा आँखों को अंधा कर रहा था। ये महज़ बारिश की बूँदें नहीं थीं, एक तरह का समंदर था जो शरीर को हवा और पानी के हवाले छोड़कर अपने थपेड़ों में जकड़ रहा था।

अलार्म की घंटी बजते ही बा निकल जाती थी छोटू को लेने। छोटू को स्कूल लेने जाने के वक़्त में कोई भूल-चूक न हो, इसलिए अपनी याददाश्त पर भरोसा न करके अलार्म लगा देती थी। घर से पाँच मिनट पहले

हंसा दीप
ई-मेल : hansadeep8@gmail.com

ही निकल जाती। सात मिनट लगते थे स्कूल तक पहुँचने में। इस मूसलाधार बारिश में छोटू को कैसे देख पाएगी! ख़ुद तो बा को देखकर आएगा नहीं। उसे बहुत मज़ा आता था बा को तंग करने में। वह चिल्लाती रहती, "ठहर तू शैतान, भाग मत। सुनता है कि नहीं।"

और छोटू भाग जाता। बा की पकड़ से दूर। कई बार उसके पीछे भागने में साँस फूल जाती। सीने पर हाथ रखकर बैठना पड़ता। रोज़ का यही नज़ारा था। स्कूल के लिए छोड़ने जाना, स्कूल से वापस लाना और शाम छह बजे तक उसका ध्यान रखना!

छोटू की नानी को नानी याद आ जाती।

उसके पैदा होने से पहले ही नानी कानन बेन, बा का ओहदा पा गई थी। अब आधिकारिक रूप से बा की पदवी मिल गई थी। बा का नाती छोटू। छोटू उर्फ़ चारू, उर्फ़ चिरायु। घर का चिराग़। बा की आँखों का तारा। जब से छोटू पैदा हुआ, बा की ज़िन्दगी उसी के आगे-पीछे सिमट गई थी। इस अहसास से बा फूल कर कुप्पा हो गई थी कि आख़िरकार मूलधन से ब्याज मिल ही गया। ज़िन्दगी की असली ख़ुशी तो ब्याज से ही मिलती है।

बा की थकी-हारी ज़िन्दगी में एकाएक स्फूर्ति का संचार हो गया था। जल्दी सुबह अपने घर पर ताला लगाकर बेटी के घर बेबी सीटिंग के लिए आ जाती। बढ़ती उम्र के सारे किन्तु-परन्तु दिमाग़ से हट गए थे। छोटी बच्ची बनकर, दौड़-दौड़कर उसका ध्यान रखती। अपनी गोदी में लादे रखती। न कभी हाथ दुःखते, न पैरों को कभी कोई कष्ट होता।

छोटू का खाना-पीना-नहाना और मालिश से लेकर हर काम की ज़िम्मेदारी मुस्तैदी से निभाती। बेटी-दामाद को कोई फ़िक्र करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। सुबह, दोपहर और शाम खिड़की से रोज़ घर में प्रवेश करते। ख़ामोशी से। कुछ कहते नहीं मगर बा बहुत कुछ सुन लेती। आँखें चेताते हुए सन्देश देतीं कि अब कौन-सा काम शुरू करे। काम शुरू होते, ख़त्म होते। दिन ढल जाता। यूँ ही ढलती गई उम्र, लेकिन मन कभी नहीं ढला। उतनी ही स्फूर्ति और ताज़गी अब भी है।

देखते-ही-देखते छोटू स्कूल जाने लगा। जब तक स्कूल से लेकर नहीं आ जाती, ध्यान वहीं अटका रहता। बालक है, कैसे अकेले रहेगा। कुछ खाएगा कि नहीं। कोई उसे तंग तो नहीं करेगा। माँ की माँ, चिन्ता के बिन्दु उतने ही गहरे।

छोटू को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

इधर बा की हर दिनचर्या का केन्द्र बिन्दु छोटू, उधर छोटू की नज़रों में बा अदृश्य रहती। जब से पैदा हुआ, हरदम बा को अपने आस-पास देखता रहा। कोई हो न हो घर में, बा तो छाया की तरह वहीं मिलती। ग्रांटेड। अनुदान मिला हो जैसे बा के नाम का। केवल नाम ही क्यों, पूरी की पूरी बा।

सुबह से लेकर शाम तक हर किसी की बात सुनता छोटू। स्कूल में टीचर की। घर में ममा-पापा की। नहीं सुनता तो सिर्फ़ बा की। जानता है कि ये सब चले जाएँगे। रह जाएगी तो बस बा। सबके सामने बना समझदार बच्चा उनके घर छोड़ते ही हिटलर बन जाता। बा कुछ भी कहे, पूरी तरह उपेक्षा करता। बा बोलती रहती और

उसके कान कुछ नहीं सुनते। तब उसका राज शुरू हो जाता। बा हज़ार हिदायतें दे, वह सब कुछ अनदेखा करके अपनी धुन में मगन रहता।

कल ही की तो बात थी। बा ने छोटू के लिए थाली लगाई थी, दाल-भात रोटी-शाक। उसे खिलाने के लिए बैठने ही वाली थी कि दौड़ते हुए जाने लगा, बा ने रोकना चाहा एक हाथ से, दूसरे हाथ का बैलेंस बिगड़ा और थाली फ़र्श पर। उसने पलटकर भी नहीं देखा कि क्या हुआ।

पहले सफ़ाई की। तब तक पग्गू आ चुकी थी। बा ने राहत की साँस ली। पग्गू को बताया भी नहीं कि अभी-अभी क्या हुआ था। अपनी मम्मी के आते ही वह आज्ञाकारी बच्चा चुपचाप खाना खाने बैठ गया।

मन-ही-मन ख़ुद पर ग़ुस्सा होती बा। ऐसा क्यों। बड़बड़ाती रहती, "मेरी तो सुनता ही नहीं। पैदा हुआ तब से नहीं सुन रहा।" शिकायत नहीं थी, ये उलाहना था। उठते-बैठते बा ख़ुद को ही ये उलाहना देती। बच्चे से क्या कहे! कुछ-न-कुछ कमी ख़ुद की ही होगी। तभी तो बा के कहे का कोई असर नहीं होता। बच्चे के प्यार में इस क़दर खो जाती कि लगता वह हर क़दम उनकी इच्छानुसार चले। दाएँ कहे तो दाएँ, बाएँ कहे तो बाएँ, लेकिन होता उलटा।

हर क़दम तो दूर वह तो उनके कहने पर एक क़दम भी नहीं चलता। यह जताते हुए कि "मैं छोटू हूँ, कोई मशीन नहीं कि कमांड दी और चल पड़े।"

बा कहती, "दूध पी लो।" वह खेलने में ऐसा मशग़ूल हो जाता कि जैसे कुछ सुना ही नहीं।

बा कहती, "नाश्ता करके जाओ।" वह नाश्ते की ओर बग़ैर देखे दरवाज़े के बाहर हो जाता।

बाक़ी बात न सुने तो कोई बात नहीं लेकिन खाने-पीने की यह लापरवाही बा से बिल्कुल बर्दाश्त नहीं होती। भूखा रहे, दूध न पीए, पानी न पीए, सुने ही नहीं तो बा की बेचैनी बढ़ेगी ही ना! बा जैसा लगाव, क्यों उसमें नहीं आता। एकतरफ़ा। प्यार का प्रतिदान तो प्यार ही है ना! बा की इन सारी चिन्ताओं का रत्तीभर भी अहसास उसे क्यों नहीं होता! मुन्नू-गुड्डू तो रहा नहीं, अब दस साल का हो गया है!

बच्चे की उपेक्षा चुभती। बहुत चुभती। भीतर तक। इस बारे में सोचती रहती बा। ऐसी बात कहती भी तो किससे! पग्गू से कहना भी अच्छा नहीं लगता। छोटू को ख़ुश करके अपनी बात मनवाने का उपाय सोचती रहती। बेटी अपने काम में इतनी व्यस्त रहती थी कि इन छोटी-मोटी बातों में उसे उलझाने का कोई तुक नहीं था। बा को याद नहीं अपनी बेटी के जन्म पर क्या ऐसा ही उन्होंने महसूस किया था! तब अपनी गृहस्थी चलाने की, ससुराल वालों की माँगें पूरी करने की ज़्यादा चिन्ता रहती थी। उम्र के इस पायदान पर न तो जीवनयापन की, और न ही कोई काम ख़त्म करने की चिन्ता थी।

अगर कोई चिन्ता थी तो यही, "छोटू ने दूध पूरा ख़त्म नहीं किया।"

"नाश्ते में बहुत थोड़ा खाया।"

"पता नहीं स्कूल में लंचबॉक्स से कुछ खाएगा या नहीं।"

और अब कई दिनों से ये चिन्ता घुस गई थी दिमाग़ में कि वह बा की बात बिल्कुल भी नहीं सुनता। आख़िर क्यों नहीं

सुनता! आज बा ने उसके लिए बहुत मन से ख़ूब घी डालकर हलवा बनाया था। उसने चखा तक नहीं। इलायची और सूखे मेवे डला, बेचारा हलवा अभी तक कढ़ाही में ही पड़ा हुआ था।

ये सारी छोटी-छोटी, इत्ती-बित्ती-सी नहीं, बा के लिए बड़ी-बड़ी चिन्ताएँ थीं। हर रोज़ सोचती कि आज ऐसा क्या बना कर रखे कि छोटू की ओर से थम्स-अप मिले। कुछ बनाकर खिलाती, दस बार पूछने पर जब वह थम्स-अप दे देता तो ऐसा सुकून मिलता मानो हाथों की मेहनत और दिमाग़ की दौड़, सभी में गोल्ड मैडल जीत गई हो। ज़रा थका हुआ दिखा नहीं कि दस बार उसके माथे पर हथेली रखती। वह उतनी ही तेज़ी से खींचकर हटा देता और अपने बाल ठीक करने लगता।

बा भी कोई कम नहीं थी। छोटू की नानी थी। कुछ और सूझता ही नहीं सिवाय इसके कि छोटू का ठीक से ध्यान कैसे रखे। बा का यह जुनून अपने चरम पर, उधर बा को इग्नोर करने का चरम छोटू के सिर पर सवार। दोनों एक-दूसरे को टक्कर देते रहते। बाज़ी मारता छोटू।

अब वह दस साल का और बा पैंसठ की हो चली थी। उसके न सुनने पर बा कुड़मुड़ाती। ख़ुद को समझाती, "पीढ़ी का अंतर। उम्र का अंतर। सोच का अंतर। पढ़ाई का अंतर। तकनीक का अंतर। कितने तो अंतर थे! ज़माने भर के। तमाम सारे।"

लेकिन फिर ख़्याल आता लाखों अंतर होने के बावजूद रगों में बहता ख़ून तो एक ही था। मन मसोस कर रह जाती। आशीषों की बरसात में कभी किसी तरह का ग़ुस्सा या नाराज़गी टिक नहीं पाती। जीवनभर बहुत कुछ घोल कर पीया था, ये तो वह बिन्दु था जहाँ से उनका नया जीवन शुरू हुआ था। नानी बनकर, नई ऊर्जा मिली थी छोटू के आने से।

पानी ने न थमने की क़सम खा ली थी। बादल भर-भर के बरस रहे थे। ज़्यादा और ज़्यादा। ज़मीन पर नदियाँ बहने लगी थीं। उछाल खाता पानी अपने पूरे वेग से क़हर मचा रहा था। ज्वार-भाटे की शक्ल में दोनों कभी इस ओर तो कभी उस ओर। स्कूल की छुट्टी हो गई थी। बच्चे बाहर आने लगे थे। रोज़ तो बा को छोटू सबसे पहले दिख जाता था। आज कहीं नहीं दिखा। छोटू तो क्या, कुछ भी साफ़ नज़र नहीं आ रहा था। पानी से लथपथ चश्मे और ऊपर से मूसलाधार बारिश में एक के बाद एक साए भर दिखाई दे रहे थे।

बा तेज़ी से इधर-उधर नज़रें घुमा रही थीं। कुछ मिनट उसे ढूँढने की कोशिश में निकल गए। बेचैनी बढ़ रही थी। बा को कुछ समझ नहीं आ रहा था, क्या करे! छोटू को कैसे ढूँढे! बच्चे इधर-उधर चारों ओर दिखाई दे रहे थे पर किसी का चेहरा साफ़ नज़र नहीं आ रहा था। अब छोटू को कैसे पहचाने। बादलों का निश्चय अटल था- हमले पर हमले करना। चश्मा खोलती-पहनती लेकिन पानी का बहाव इतना था कि न चश्मा पहनने पर कुछ दिख रहा था, न चश्मा खोलने पर। पानी का साथ देते हुए हवा ने भी गति पकड़ ली थी। पैर लड़खड़ा रहे थे। पानी का बहाव सब कुछ बहा ले जाने को आतुर था।

अपनी आदतानुसार छोटू उन्हें देखकर भाग गया तो, कहाँ और कैसे खोजेगी! पानी के बहाव के साथ इधर से उधर जा रही थी

बा। कहीं तो बच्चा दिख जाए। न मिला तो क्या करेगी! हज़ारों शंकाएँ जन्म लेने लगीं। हे भगवान कोई ले तो नहीं गया उसे। पानी का आवेग जितना तेज़ था उससे कई गुना ज़्यादा तेज़ बा की धड़कनें थीं जो लगातार नए-नए सन्देहों से घिरती जा रही थीं। बदहवास-सी बा बार-बार चश्मा खोलती-पहनती, आँखें मिचमिचाती, इधर-से-उधर चक्कर लगा रही थी।

बेटी-दामाद को तुरन्त फ़ोन करना होगा लेकिन फ़ोन के लिए तो घर जाना पड़ेगा। और यहाँ से छोटू को लिए बग़ैर तो जा ही नहीं सकती। अपनी इस बेबसी से इस क़दर निराश हो गई कि बाहरी पानी के बहाव के साथ भीतर जमा आँखों का पानी एकमेक हो गया। ज़ोर-ज़ोर से रोने का मन कर रहा था ताकि उनकी रोने की आवाज़ सुनकर शायद कोई मदद के लिए आ जाए।

तभी किसी ने आकर बा का हाथ पकड़ा। जाना-पहचाना स्पर्श! बा ने ख़ुशी से उमगते हुए कहा, "बेटा, छोटू।"

"हूँ"।

"तुम आ गए! हे भगवान, लाख-लाख शुक्र आपका। बेटा, मुझे पानी के अलावा कुछ दिखाई नहीं दे रहा। कब से ढूँढ रही थी तुम्हें। अब घर कैसे जाएँगे, मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा।"

"चलो।" कहते हुए छोटू ने बा की हथेली थाम ली।

"मैं नहीं चल पाऊँगी बेटा।"

छोटू ने बा का हाथ कस कर पकड़ा और चलने लगा। पानी का बहाव आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, हर ओर से धक्का दे रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे पानी और बा के बीच रस्साकशी हो रही हो। पैर बहक रहे थे। फिर से बोली, "कुछ दिखाई नहीं दे रहा बेटा।"

"इधर चलो बा।"

अपने बस्ते को पीठ पर लादे छोटू एक हाथ से बा को पकड़ता आगे बढ़ता रहा और बा को हर मोड़ पर सावधान करता रहा। बा और छोटू दोनों पानी से सराबोर क़दम-दर-क़दम आगे बढ़ रहे थे। बारिश की गिरफ़्त में भीगी हुई बा, छोटू की हथेली थामे भीतर से भी भीगने लगी थी।

छोटू के हाथ में अपना हाथ पाकर बा ने जिस स्पर्श का अनुभव किया वह शायद पहले कभी नहीं किया था। ज़िम्मेदार, पथ प्रदर्शक, नन्हा सहारा। रास्ते की तमाम मुश्किलों से बचाते छोटू ने घर की देहरी पर जाकर ही बा का हाथ छोड़ा। बोला, "बा कपड़े बदल लो, सर्दी लगा जाएगी।"

बा ने अपने शरीर से टपकते पानी को हथेली में थामने की असफल कोशिश करते हुए घर में प्रवेश किया। अनगिनत बूँदों के साथ शरीर का हर अंग नम था। आँखें भी बारिश के पानी से तालमेल करती अनियंत्रित हो चली थीं। भीगे हुए शरीर के साथ जो सबसे ज़्यादा भीगा था, वह था दोनों का रिश्ता।

बा के शरीर की रग-रग में चेतना का संचार करता वह स्पर्श और सहारे के लिए बढ़ाया हाथ, हमेशा बा के साथ रहेगा। आँखें बंद होने तक। शैतान और ढीठ बच्चा एकाएक बड़ा बन गया था। बहुत बड़ा। कुछ मिनटों के उस रास्ते में वे तमाम उलाहने अब बा की क़िस्मत को सराहने लगे थे।

ठीक वैसे ही जैसे दस बरसों का किश्त-दर-किश्त ऋण, एकमुश्त जमा कर दिया गया हो। ❑

(1)

हमने लाशों पे बने घर देखे
टूट के रोते सितमगर देखे
जहाँ साहिल पे ही कश्ती डूबी
ऐसे मनहूस समन्दर देखे
कोई मन्ज़िल तक पहुँचे कैसे
रास्ता भूलते रहबर देखे
कौन अम्नो सुकूँ की बात करे
दिल हुए जाते हैं पत्थर देखे
रात घर आए हरिश्चन्द बोले
अब कोई सच बोलकर देखे
तय थी जिनके लिए रोज़ी-रोटी
उन पे बेइंतेहा क़हर देखे।

(2)

ज़मीं चाहिए मुझे न आसमाँ चाहिए
दरख़्त का साया बुज़ुर्गों की दुआ चाहिए
वो जो फुटपाथ पे घूमती है बेबस औरत
शहर के लोगों इसे आसरा चाहिए
खिड़कियाँ खोल दो अर्से से बन्द कमरे की
धूप चाहिए इसे और हवा चाहिए
किसी रोते बच्चे को खिलौना मत दो
माँ चाहिए इसे सिर्फ़ माँ चाहिए
दर बदर घूमते फिरेंगे कब तक
चाहिए हक़ हमको मेहरबाँ चाहिए
जिसकी ख़ातिर तरसती हैं आँखें मेरी
वो सामने आ जाए और क्या चाहिए! ❑

प्रेमकुमार गौतम
ई-मेल : lomeo.kapil@gmail.com

चेहरे

अब तक दुःख की कल्पनाओं में डूबे हुए मिथक के मन में मृत्यु और परिजनों के दुःख के अनगिनत बिम्ब उभर आए थे। अपने जवान बेटे की मृत्यु की घटना याद कर मिथक अत्यंत विषाद अनुभव करने लगा था। मृत्यु से उपजे शोक में डूबे हुए अनेक दृश्य और चेहरे उसके मानस में उभर आए थे। सबसे पहला दृश्य पाँच साल की उम्र में मिथक ने अपने गाँव में देखा था। रामबदन पाण्डेय के परिवार में किसी महिला की मृत्यु हुई थी।

आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
ई-मेल : aptripathihindi@gmail.com

"तुम तैयार नहीं हुए? अभी वॉशरूम में ही घुसे रहोगे? आज नहाने में इतना समय लगा रहे हो। देर हो रही है, कब तैयार होगे? आठ बजने वाला है।" रोमिला का रूखा स्वर सुनकर मिथक हड़बड़ा उठा था। उसकी आवाज़ मिथक को बेसुरी लगी। वह सोचने लगा था, 'शहद-सी मीठी आवाज़ तो कभी नहीं रही। ...फिर क्यों कर उसके मन में रोमिला के मीठे बोल सुनने की कल्पना जगी? ...इस वक़्त इस बात पर विचार करने का उचित समय नहीं है।' यह सोचकर मिथक शान्त रह गया था।

बाथरूम से निकलकर उसने लाउंज में दीवार पर टँगी घड़ी देखा, आठ बजने वाले थे। छतरपुर के लिए निकलने का समय हो रहा था। दोपहर बारह बजे के पहले उसे हर स्थिति में छतरपुर पहुँचना है। मिथक के ख़्यालों में पिछले कई सालों से यह बात बराबर आने लगी है कि छोटी-सी ज़िन्दगी है और वक़्त बहुत तेज़ी-से भाग रहा है। कौन पकड़ पाया है वक़्त को? वक़्त कब किसी का संगी-साथी हुआ है। उसके साथ क़दम-ताल मिलाना बहुत मुश्किल है। ख़ैर ...इस वक़्त यह सब सोचने का नहीं है। पहले ही देर हो चुकी है। अब और देर करना ठीक न होगा।

कार दरवाज़े पर आकर खड़ी हो गई थी। ड्राइवर ने हार्न बजाकर अपने आने की सूचना दे दी।

मिथक जल्दी से वॉशरूम से निकला और सीधे पूजाघर में घुस गया। लकड़ी के उस छोटे-से मन्दिर में पंक्तिबद्ध बैठे हुए देवी-देवताओं के चेहरे पर उसने विनयपूर्वक दृष्टि डाली, समदर्शिता उनके चेहरे पर विद्यमान है। अकेले श्रीकृष्ण हैं, जिनसे मिथक की बचपन

से प्रीति हो गई है। उनकी मोहिनी सूरत सबसे ज़्यादा उसे भाती है। हाथ जोड़कर उसने मन में ही कुछ मंत्र/स्तुति पढ़ा, देवी-देवताओं के नाम उच्चारित किए और इस तरह पूजन-अर्चन की औपचारिकता पूरी की। मिथक ने यह सब इतनी जल्दी निबटाया कि उस मन्दिर में विराजे देवगण भी हैरान रह गए होंगे।

बेडरूम में आकर मिथक ने अलमारी खोली, वार्डरोब से हैंगर में टँगा प्रेस किया हुआ काला पैंट और शर्ट निकाला। गुरुवार का दिन था। उसने हल्के पीले रंग की शर्ट पहनी। सातों दिनों के अनुसार अलग-अलग रंग की शर्ट पहनना उसे पसन्द है। मिथक ने बालों में कंघा किया, काले जूते पहने और ड्रेसिंग टेबल के सामने आकर खड़ा हो गया। आदमक़द दर्पण में उसने अपना चेहरा मुड़-मुड़कर कई बार देखा। अपनी छवि किसे सुन्दर नहीं लगती है!

बेडरूम से सीधे डाइनिंग टेबल की कुर्सी पर आकर मिथक बैठ गया था। दीवार घड़ी पर उसने फिर एक निगाह डाली, आठ बजकर बीस मिनट हो गए थे। मिथक नाश्ता के लिए रोमिला को पुकारता कि, "देर हो रही है, फ़ौरन नाश्ता दो।"

परन्तु, मिथक के कुछ कहने के पहले ही रोमिला चाय का प्याला और पोहा तैयार कर डाइनिंग टेबल पर रख देती है। मिथक ने झटपट नाश्ता किया और बेडरूम में आकर कवर्ड से हैंड बैग निकाला तथा रोमिला को आवाज़ दी, "अच्छा, मैं चलता हूँ।" साथ में उसे यह हिदायत दी कि, "पूजा-पाठ निपटा कर समय पर नाश्ता कर लेना। देर मत करना।" "हाँ" कहकर रोमिला ने मंद स्वर में अपनी सहमति जताई।

पूजा-पाठ किए बिना रोमिला कभी अन्न नहीं ग्रहण करती है। यह उसकी दिनचर्या में शामिल है। समय पर नाश्ता करने के लिए रोमिला को हर रोज़ कहना पड़ता है। दोनों में विवाद होना आम बात हो गई है। अब तो मिथक को चिढ़-सी होने लगी है।

रोमिला किचन से निकलकर लाउंज में आ गई थी, मिथक जाने के लिए तैयार खड़ा हुआ था। सुबह से दो बार रोमिला दवा खाने की बात मिथक को याद दिला चुकी है। एक बार और उसने याद दिलाया। पिछले कई सालों से मिथक को ब्लडप्रेशर की शिकायत हो गई है पर दवा खाने में लापरवाही..., "अरे! मैं तो भूल ही गया।" मिथक ने सहज भाव से कह दिया। रोमिला को अखर गया कि मिथक उसकी किसी बात को गंभीरता से नहीं लेता है। उसने कोई प्रतिवाद नहीं किया? वह चुप बनी रही।

कुछ पल बाद, थोड़ा तुर्श स्वर में रोमिला बोली, "यह कोई आज की बात है? लापरवाही और सब काम में हड़बड़ी। जब इस आदमी को अपनी तबियत का ख़्याल नहीं है तब दूसरे की चिन्ता का प्रश्न ही नहीं उठता है। ज़रा अपना चेहरा देखो। रंग कैसा उतर गया है?" रोमिला की बातें सुनकर मिथक ने दर्पण में जाकर पुनः अपना चेहरा देखा और हल्की-सी चिन्ता ज़ाहिर करते हुए कहा, "अब जैसा भी है। बदल तो जाएगा नहीं!"

"तुम्हारे चेहरे पर कुछ भी असर नहीं होगा। कितने प्राकृतिक उपाय बताए, औषधि बताई, पर कुछ करो तब न? अपने लिए भी थोड़ा समय निकालना चाहिए।" रोमिला जानती है कि उसके कहे का बहुत असर

मिथक पर नहीं पड़ता है लेकिन, अपने दिल से वह मजबूर है। बिना बोले नहीं रहा जाता है उससे।

"दवा खाने की भी सुधि नहीं रहती है," कहकर रोमिला दवा और एक गिलास पानी लेकर सामने आ खड़ी हुई। उसने दवा और पानी का गिलास मिथक के हाथों में थमा दिया। मिथक ने दवा खाकर, दो घूँट पानी पिया। आधा से कम भरा पानी का गिलास डाइनिंग टेबल पर रख दिया और फिर घड़ी की ओर देखा, साढ़े आठ बज चुके थे। "ओह! बहुत देर हो चुकी है।" झट से मिथक ने बैग उठाया और घर के मेन गेट से बाहर निकल आया।

ड्राइवर ने मिथक के हाथों से बैग लिया और कार की पिछली सीट पर रख दिया। मिथक ड्राइवर के पास वाली सीट पर बैठ गया था। उसने सीट बेल्ट लगा लिया, ड्राइवर के कहे बिना। जब से रोड एक्सिडेंट में उसके जवान बेटे की मौत हुई तबसे वह बहुत सतर्क होकर घर से बाहर निकलता है। बेटे की मौत का हादसा सड़क पर निकलते वक़्त मिथक को हमेशा अलर्ट करता है।

कार छतरपुर के लिए रवाना हुई। मिथक को आज दोपहर बारह बजे तक महाराजा छत्रसाल विश्वविद्यालय, छतरपुर में नरेश मेहता शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में पहुँचना है। पिछले दिनों की तमाम व्यस्तताओं के कारण उसे व्याख्यान की तैयारी के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाया था। उसने सोचा कि चलो कार में ही बैठे रहकर व्याख्यान के महत्वपूर्ण बिंदुओं पर विचार कर लेगा। उसने मन-ही-मन विचारों का ताना-बाना बुनना शुरू किया। वैसे भी एक अच्छे व्याख्यान के लिए उसे मानसिक तैयारी की ज़रूरत महसूस होती है। व्याख्यान के विषय को ठीक से समझे बिना कोई गहरी एवं महत्वपूर्ण बात नहीं कही जा सकती है। इसीलिए मिथक ने कुछ नोट्स पहले से ले रखे थे। सोचने-विचारने के लिए सुकून के कुछ पल इस यात्रा में उसे मिल गए थे।

सिविल लाइंस की ओर से मिथक की कार आगे बढ़ने लगी थी। अगले चौराहे पर पहुँचकर एक साहित्यिक मित्र को रिसीव करना था। उस साहित्यकार मित्र को भी समारोह में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया गया था। कार बजरिया वाली सड़क की ओर मुड़ने वाली थी। सामने स्पीड ब्रेकर आ गया।

ड्राइवर ने कार की गति धीमी की। स्पीड ब्रेकर बिल्कुल आँखों के सामने था। ड्राइवर समझदार था, बहुत सावधानी से उसने स्पीड ब्रेकर पार करने की कोशिश की। टैक्सी की गति इतनी कम थी कि पैदल चल रहा व्यक्ति भी कार से आगे निकल गया था। स्पीड ब्रेकर से गुज़रते हुए मिथक के शरीर को हल्का-सा झटका लगा। उस वक़्त मिथक विचारों में डूबा हुआ था। मिथक का ध्यान भंग हुआ और वह अपनी मनगुफा से बाहर निकल आया था। एकाग्रता भंग हुई और विचारों की शृंखला टूट गई। सारा चिन्तन यकायक बिखर गया। बहुत ध्यान करने पर उसके विचार एकीकृत हो पाए थे।

मिथक की दृष्टि यकायक सड़क के दोनों ओर खड़ी हुई भीड़ पर पड़ी। बीस-पच्चीस लोगों की मझोली भीड़ सड़क के दोनों तरफ़ खड़ी हुई थी। सभी के चेहरे उदास थे। ...बेरौनक़ ...ऐसा लग रहा था कि चेहरे पर

मुर्दिनी-सी छाई हुई है। यह दृश्य देखकर मिथक को लगा कि 'हो न हो, कोई गंभीर बात ज़रूर है। शायद दुःखभरी ...घर के सामने इतनी भीड़?' दुःख की आशंका की एक लहर उसके भीतर दौड़ गई थी। उस मझोली भीड़ में औरतें, जवान, बूढ़े और बच्चे सभी शामिल थे। निःशब्द खड़े थे वे लोग। अलबत्ता कुछ महिलाएँ आपस में बुदबुदाती हुई नज़र आईं पर उनकी बातों का सिग्नल मिथक के कानों तक नहीं पहुँच पाया। पूरे वातावरण में एक उदासी व्याप्त थी।

मिथक के दिमाग़ में एक बात आई, 'लगता है कि अंतिम संस्कार के लिए लोग जुटे हैं। ...लोगों के चेहरे की गवाही को अनदेखा नहीं किया जा सकता है?' मिथक का मन व्याकुल हो उठा था। वह यह सोचने लगा कि 'एक झटके में उस भीड़ में खड़े लोगों के चेहरे को पढ़ लेना आसान नहीं है? क्या इतनी सहजता से उन सारे चेहरे के भावों को पढ़ा जा सकता है? चेहरा पढ़ लेने की कोई तरकीब भी तो नहीं आती है उसे?' ...सामान्यतः मनुष्य के चेहरे को देखकर उसकी मनोदशा का अनुमान लगाया जा सकता है लेकिन चलते-चलते एकाएक चेहरे पर उतराए भावों को समझ लेना सहज सम्भव नहीं है? मिथक के मन में प्रश्नों की झड़ी-सी लग गई थी लेकिन सवालों का जवाब उसे नहीं सूझ रहा था।

भीड़ में खड़े हुए लोगों के चेहरे पर ग़रीबी की आड़ी-तिरछी रेखाएँ खिंची हुई थीं। उनकी आँखों में जैसे किसी के आने का इंतज़ार झूल रहा हो। इतना सब कुछ पलभर में उसने जाँच लिया? यही बात उसके विश्वास को डगमगा रही थी। उसे भारी दुविधा में डाल रही थी। एक क्षण के लिए स्वयं पर यक़ीन करना उसके लिए मुश्किल हो गया। उस पूरे माहौल को देखकर उसकी समझ में एक ही बात आई, 'हो न हो उस घर में कोई ग़मी हो गई है।'

सुबह-सुबह किसी की मृत्यु की बात सोचकर मिथक का मन सिहर उठा था। वह इस द्विविधा में आ गया था, 'उसे वहाँ कोई अर्थी नहीं दिखाई दी। फिर इतने यक़ीन के साथ वह कैसे कह सकता है कि वहाँ कोई ग़मी हो गई है?' मिथक ने लगभग हर चेहरे को पुनः याद करने की कोशिश की। उसके मस्तिष्क में उदास चेहरों का एक कोलाज-सा उभर आया था। उसकी स्मृति में न जाने कितने जाने-अनजाने चेहरे एकबारगी झिलमिला उठे थे। कोई भी चेहरा स्पष्ट नहीं हो रहा था।

मिथक के मन में यह भी विचार आया कि 'लगता है कि घर के लोग रो-धोकर शान्त हो चुके हैं। आख़िर शोकाकुल परिवार कब तक रोता रहता! रोने की भी एक सीमा होती है। ऐसे ग़मगीन माहौल में धैर्य बहुत अपेक्षित होता है।' ऐसी ही अनेक बातें मिथक के मन में तीव्र गति से उमड़ने-घुमड़ने लगी थीं। वह यह भी सोचने लगा था, 'आख़िर घर के लोग कैसे हैं? कोई रोने की आवाज़ नहीं सुनाई दे रही है। यद्यपि मकान के बाहर भीड़ होने के बावजूद गहरा सन्नाटा पसरा हुआ था।'

उस भीड़ में खड़े लोगों के चेहरों पर छाई उदासी को समझने की एक अंतिम कोशिश मिथक ने की। वह सोचने लगा था, 'यदि घर का कोई बड़ा-बुज़ुर्ग मरा होता और वह भी हारी-बीमारी से पीड़ित होकर, तो उसका मरना उसके और परिवार दोनों के लिए कष्ट से मुक्ति है। घनघोर विलाप रिश्तों

की निकटता पर निर्भर करता है। ...सम्भव है घर के अधिकांश लोग परदेसी हों और मृत व्यक्ति की देखभाल के लिए परिवार का एकाध सदस्य ही साथ में हो ...और परिवार का एक भी सदस्य साथ में न हो? ...रिश्तेदार, मित्र आदि उपस्थित रहे हों। सम्भवतः इसीलिए किसी व्यक्ति के चीख़ने-चिल्लाने की आवाज़ नहीं सुनाई दी उसे।'

बाज़ार में जुटी भीड़-भाड़ के कारण कार की गति धीरे हो गई थी। अभी मित्र के घर तक पहुँचने में थोड़ा समय और लगेगा।

अब तक दुःख की कल्पनाओं में डूबे हुए मिथक के मन में मृत्यु और परिजनों के दुःख के अनगिनत बिम्ब उभर आए थे। अपने जवान बेटे की मृत्यु की घटना याद कर मिथक अत्यंत विषाद अनुभव करने लगा था। मृत्यु से उपजे शोक में डूबे हुए अनेक दृश्य और चेहरे उसके मानस में उभर आए थे। सबसे पहला दृश्य पाँच साल की उम्र में मिथक ने अपने गाँव में देखा था। रामबदन पाण्डेय के परिवार में किसी महिला की मृत्यु हुई थी। पूरी रोहा-रोहट मची हुई थी। उस बाल उम्र में मृत्यु का अर्थ उसे समझ में नहीं आया था। गहरे लाल रंग की साड़ी में लिपटी उस औरत की मृत देह उसे आज भी याद आती है। इसके बाद तो मिथक ने अपने घर-परिवार से लेकर मोहल्ले, पास-पड़ोस, परिचित-अपरिचित परिवारों में मृत्यु के अनगिनत दुःखद दृश्य देखे हैं। उसे याद आया कि ऐसी कारुणिक घटनाएँ फ़िल्मों में बहुत स्वाभाविक रूप से बड़ी संवेदनशीलता के साथ दिखाई जाती हैं। ऐसी संवेदनशीलता वास्तविक जीवन में बहुत कम हो गई है। अर्थी मरघट पर पहुँचने पर शव यात्रा में शामिल लोग वैराग्य से लेकर दुनियादारी की न जाने कितनी बातें आपस में कह लिया करते हैं। शोकमय उस वातावरण से कैसे वे अपने मन को अलग कर लेते हैं? उसे घोर आश्चर्य हुआ। यही सब सोचकर मिथक दुःख की नदी में डूबने-उतराने लगा था। थोड़ी देर बाद, अपने को संयत करते हुए मिथक ने स्वयं को दुःख से उबार लिया था।

ड्राइवर की ओर मुख़ातिब होकर मिथक ने कहा, "अरे! आपने ग़ौर किया, वहाँ कितनी भीड़ थी? लगता है वहाँ किसी परिवार में ग़मी हो गई है। उस घर के बाहर खड़े हुए लोगों पर ध्यान दिया क्या?"

टैक्सी ड्राइवर ने मिथक की ओर अपनी गर्दन घुमाई और अजीब-सी नज़रों से देखने लगा था। उसने अपनी गर्दन सीधी कर ली और मुस्कुराकर बोला, "जी, मैंने देखा। पर सरजी जो आप कह रहे हैं वैसा नहीं है। ...अरे सर! आप भी ...क्या कह रहे हैं? आपको ऐसा क्यों लगा? अरे सर! कोई मरा-वरा नहीं है। ये तो राशन पाने वालों की भीड़ है। सप्ताह में चार रोज़ यहाँ ऐसी ही भीड़ सुबह से जुटा करती है। सामने सरकारी राशन की दुकान है। अभी बंद है। खुलने के इंतज़ार में खड़े हैं लोग।"

मिथक झेंप गया और सोचने लगा, "अरे! ऐसा कैसे सम्भव है? इतनी बड़ी भूल या नादानी? इस क़दर नासमझी? मैंने क्या सोच लिया?"

ड्राइवर आगे बोला, "देखा नहीं आपने? सभी लोगों के हाथ में थैला था।"

कार अपनी गति से आगे बढ़ रही थी। हम मित्र के मोहल्ले के क़रीब आ रहे थे। कुछ दूरी शेष रह गई थी।

मिथक के अनुभव संसार में दर्ज राशन

की दुकान और वहाँ का पूरा दृश्य स्मृति में सजीव हो उठा था। उनका ध्यान राशन लेने वाली भीड़ पर गया।

'ऐट ए ग्लांस' मिथक ने राशन की दुकान खुलने की घंटों प्रतीक्षा करने वाले या राशन न मिलने के कारण बैरंग लौट जाने वालों की विवशता और उन लोगों के मायूस और उदास चेहरे तथा किसी की मृत्यु के कारण दुःखी व्यक्ति के चेहरों को समानांतर रखकर देखने की कोशिश की। अद्‌भुत समानता। उसे बात समझते देर न लगी। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। दोनों ही प्रसंगों में लोगों के चेहरे पर छाई उदासी, निराशा का रंग लगभग एक जैसा। कितनी साम्यता दोनों प्रकार के चेहरों में। इसी वजह से उस भीड़ में खड़े लोगों के चेहरे पर छाई गहरी उदासी को देखकर मिथक को किसी की ग़मी में एकत्र हुए लोगों की भीड़ समझ लेने का भ्रम हुआ।

मिथक को अपने उन पुराने दिनों की याद आई जब वह राशन की दुकान पर राशन लेने के लिए जाया करता था। राशन लेने वालों की भीड़ का हिस्सा हुआ करता था। उन दिनों भी घंटों लाइन में खड़े रहकर मन का कसैला होना सामान्य बात थी। अतीत के वे सारे दृश्य मिथक के मानस में एकाएक घूम गए। उदास, परेशान और राशन की दुकान वाले के आने की प्रतीक्षा कर रहे लोगों के चित्र और चित्त मिथक के ध्यान में उभर आए थे। ऐसे अनेक चाक्षुष बिम्ब उसके भावजगत् में बनते-बिगड़ते रहे हैं।

मिथक ने टैक्सी ड्राइवर से अपने मन की बात शेयर की। उसकी मानसिक स्थिति भाँपकर ड्राइवर ने कहा–

"सर! हो जाता है कभी-कभी ऐसा भ्रम। अधिक संवेदनशील होना बड़ी वजह है। आप नाहक दुःखी हो रहे हैं। अब इतना अधिक भावुक होने का ज़माना नहीं रह गया है। इतनी अधिक संवेदनशीलता आत्मघाती क़दम है। कोई आपकी भावनाओं को समझने वाला नहीं है। बेवकूफ़ समझते हैं लोग। दुनिया की बदलती चाल को पहचानिए।"

ड्राइवर की बात पर ग़ौर फ़रमाते हुए मिथक ने अपनी बात कहनी चाही। ...तब तक कार साहित्यिक मित्र के द्वार पर पहुँच गई थी। ज़ोर का हार्न सुनकर मित्र अपने घर के बाहर निकल आए थे। दोनों मित्रों में परस्पर अभिवादन का आदान-प्रदान हुआ। ड्राइवर ने पिछली सीट का गेट खोला। वे मित्र कार की पिछली सीट पर आकर बैठ गए। तीनों के बीच थोड़ी देर तक एक गहरी चुप्पी फैल गई थी। कार कॉलोनी से निकल कर मुख्य सड़क पर आ गई थी।

मिथक ने मित्र के समक्ष आज का पूरा वाक़या बयान किया। मित्र ने मुस्कुराते हुए कहा कि वाह! क्या इमेज डेवलप की है आपने। सचमुच यह कल्पना एक लेखक ही कर सकता है। ग़ज़ब...।

मिथक ने अपनी बात का अगला सिरा मित्र को पकड़ाते हुए कहा, "आदमी के अवचेतन मानस में मृत्यु की घटनाएँ, दुःख में भीगे हुए चरित्र सदैव ज़िन्दा रहते हैं। ऐसे दृश्य देखकर मन का उदास होना सहज स्वाभाविक है।"

मिथक की ओर मुख़ातिब होकर साथ में बैठे मित्र कहने लगे थे, "लेने वालों की समस्याओं की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है? राशन देने वाले की बेहिसाब

बदमाशियों पर कोई नियंत्रण नहीं रह गया है।"

ड्राइवर बीच में ही बोल पड़ा, "अरे सर, अब क्या बताऊँ? कितनी बार राशन के लिए दौड़ना पड़ता है। कभी दुकान बंद रहती है, कभी राशन नहीं आया है, कभी चावल नहीं, कभी गेहूँ नहीं, कभी राशन ख़त्म हो गया है। निश्चित कुछ भी नहीं।"

ड्राइवर का बीच में बोलना मित्रवर को तनिक भी अच्छा नहीं लगा। वे गंभीर हो गए थे। ड्राइवर की कही हुई बात के सन्दर्भ में मिथक ने सिर हिलाते हुए कहा, "मेरा भी यही अनुभव रहा है।"

इस पूरे प्रसंग पर मिथक की प्रशंसा करते हुए मित्र ने कहा, "आपकी कल्पना और संवेदनशीलता की दाद देता हूँ। आजकल आदमी की संवेदनाएँ दिनों-दिन छीज रही हैं।"

वे मित्र इस बहस में पूरी तरह शामिल हो चुके थे। वे पुनः कहने लगे, "देखिए मिथकजी! समय पर राशन की दुकान का खुलना जैसे बीते युग की बात हो गई है। जनता की परेशानी से किसी को क्या लेना-देना है। ...जनता के सब्र की परीक्षा होती रही है।"

मित्र की बातें सुनकर व्यवस्था के प्रति मिथक की भौंहें तन गईं। बीच में ही टोकते हुए मित्र ने अपनी बात रखी, "इस परिप्रेक्ष्य में कलाकार कुछ कर सकता है लेकिन उसे भी अपने कहे या लिखे शब्दों पर भरोसा करना होगा।..."

मित्र के इस विचार पर अपनी सहमति जताते हुए मिथक ने कहा, "इसी पर, किन्तु, परन्तु, लेकिन ने तो हमें कायर बना दिया है। अपनी जान छुड़ाने के लिए अक्सर हम ऐसा बहाना खोज लिया करते हैं। हम बहुत सहनशील लोग हैं, किन्तु उतने ही निकम्मे और समझौतावादी भी। हमारा ग़ुस्सा हर ग़लत बात पर भड़कता तो है पर जल्दी ख़त्म भी हो जाता है। हमारे विस्फोटक विचार कागद पर सिमटकर रह जाते हैं। हम वास्तविक ज़िन्दगी में केंचुए की चाल में होते हैं।"

मानसिक तौर पर अब उसे थकान महसूस होने लगी थी। थोड़ी देर पहले देखे हुए कितने ही उदास चेहरे बरबस उसकी स्मृतियों के गलियारे में हलचल पैदा कर ओझल होने लगे थे। अपना भी एक उदास चेहरा उन असंख्य चेहरों में शामिल हो गया था। ...बहुत बेबसी है ज़िन्दगी में? ...लगता है कि उदासी का एक सैलाब हमारे चतुर्दिक फैला हुआ है। तरह-तरह के कारणों से लोग दुःखी हैं। जीवन की कश्ती समय के दरिया में डूबते-उतराते आगे बढ़ रही है।

मिथक के भीतर दुःख की अनुभूति की आँच धीमे-धीमे मंद होने लगी थी। इस मनोदशा से उबरने के लिए मिथक पिंजरे में बंद पंछी की तरह फड़फड़ाने लगा था। मिथक को ऐसा लगा मानो मुँह लटकाए सभी चेहरे बड़ी तीखी नज़रों से उसे घूरे जा रहे हैं और वह मौन साधे खड़ा हो गया है।

मित्र ने टोका, अरे भाई, अब इस उधेड़बुन से बाहर निकलो। छोड़ो इन बातों को।...

कार की रफ़्तार तेज़ हो चुकी थी। सड़क के दोनों किनारे ऊँघते हरे-भरे पेड़-पौधे मानो मिथक को पुकार रहे हों कि कभी हमारी भी सुधि ले लिया करो। ❑

क़लम

हर सफ़र में संग चली मेरी क़लम
दोस्त सबसे है सही मेरी क़लम

आँसुओं में डूबकर लिखती कभी,
दर्द को पीकर हँसी मेरी क़लम

जब बढ़ी दिल की मेरी बेचैनियाँ,
मुझपे ही मिसरे पढ़ी मेरी क़लम

वक़्त ने ज़ख़्मी किया जब-जब मुझे,
बन गई दवा तभी मेरी क़लम

दिल किया मेरा कि दिल की बातें कहूँ,
ख़ुद-ब-ख़ुद ग़ज़ल कही मेरी क़लम

नाज़ उसकी हर उठाई इसलिए,
हो गई बहुत हठी मेरी क़लम

जब किसी ने भी दिखाई आँखें किरण,
सामने उसके तनी मेरी क़लम। ❑

किरण सिंह
ई-मेल : kiransinghrina@gmail.com

महका गुलाब रखेंगे

तुम्हारी बात का कुछ यूँ जवाब रखेंगे
तुम आग रखोगे, हम माहताब रखेंगे

ज़बाँ तुम्हारी जो फिसलेगी यार महफ़िल में
तुम्हारे पक्ष में हम हर किताब रखेंगे

इरादा मुझको जो बर्बाद करने का ठाना
किसी जतन वो नहीं कामयाब रखेंगे

भले ज़बाँ में भरे हों तुम्हारे ख़ार बहुत
हम अपने लहजे में महका गुलाब रखेंगे

बहार दिल के बग़ीचे में आएँगी हरदम
गुल और कली जो वहाँ बेहिसाब रखेंगे। ❑

सिद्धेश्वर
ई-मेल : sidheshwarpoet.art@gmail.com

बाँग्ला कविताएँ

जीवनानन्द दास

(17 फरवरी, 1899–22 अक्तूबर, 1954)

बोरिशाल (बाँग्लादेश) में जन्मे बाँग्ला के जनप्रिय रवीन्द्रोत्तर कवि। मरणोपरांत 1955 में श्रेष्ठ कविता के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित। 1926 में पहला कविता-संग्रह प्रकाशित। 'झरा पालक', 'धूसर पाण्डुलिपि', 'बनलता सेन', 'महापृथिबी', 'रूपसी बाँगला' आदि उनकी बहुचर्चित कृतियाँ।

अनुवाद
रविशंकर सिंह

ई-मेल : ravishankarsingh1958@gmail.com

वनलता सेन

वनलता सेन!
हज़ारों वर्षों से मैं दुनिया की डगर पर चल रहा हूँ,
सिंघल समुद्र से मलाया समुद्र तक
रात्रि के अंधकार में,
मैं कितनी बार भटक चुका हूँ,
मैं वहाँ बिंबिसार और अशोक की धूसर दुनिया में था,
और सुदूर विदर्भ नगर के सघन अंधकार में,
मैं एक क्लांत आत्मा हूँ,
मेरे चतुर्दिक है जीवन का फेनिल सागर,
दोहरी शान्ति दी मुझे
नाटोर की वनलता सेन ने
न जाने कब से,
विदिशा का सघन अंधकार
उसके काले घने केशपाश,
उसका मुखमंडल
श्रावस्ती का कला-कौशल,
अति सुदूर समुद्र में,
टूटी पतवार वाली नाव पर जो नाविक
हो गया है दिशाहीन,
देखता है वह जब
हरियालियों के देश में
दालचीनी के वृक्षों से घिरा हुआ द्वीप,
ठीक उसी तरह अंधकार में मैंने उसे देखा
बोली वह–
"कहाँ रहे इतने दिनों?"
चिड़ियों के घोसलों की मानिंद
नाटोर की वनलता सेन ने आँखें उठाई ऊपर

उसके शब्द -
जैसे, पूरा दिन बीतने के बाद ओस कणों की ध्वनि
आती है संध्या,
चील अपने पंखों से धूप की गंध पोछ देती है,
धरती के सारे रंगों के बुझ जाने के बाद,
पाण्डुलिपि लिखी जाती है,
तब रचना में जुगनुओं की तरह शब्द झिलमिलाते हैं,
सारी चिड़ियाँ,
सारी नदियाँ,
अपने ठिकाने पर लौट आती हैं,
इस जीवन का सारा लेन-देन चुक जाता है,
बच जाता है केवल अंधकार,
सामने बैठने के लिए होती है वनलता सेन।

(* नाटोर– बाँग्लादेश का एक नगर)

घास

पृथ्वी पर फैली है
नींबू की कोंपल सरीखी
सुहानी सुबह;
सब्ज़ टाभा नींबू सरीखी सब्ज़ घास
वैसी ही सुबास
हिरणों के झुंड चर रहे हैं!
सोमरस की तरह
मैं पीना चाहता हूँ,
ग्लास-ग्लास
हरित घास की गंध,
घास की फुनगियाँ
मोतियाबिन्दग्रस्त आँखों पर
सहलाना चाहता हूँ,
घास की फुनगियाँ
पालन-पोषण करती हैं मेरा
यदि जन्म लूँ तो मैं
किसी घास माँ
की देह से
किसी बियावान में
मसृण अँधेरे से निकलकर
घास में घास बनकर।

सपनों की ध्वनियाँ

सपनों की ध्वनियाँ आकर कहती हैं–
सर्वोत्तम है शान्ति;
निस्तब्ध शिशिर की रात्रि में
जलता है दीपक
या बुझता है दीपक,
बिस्तर पर शयन काल में
ऐसा लगता है
जैसे बिस्तर पर लेटे हुए
स्वप्निल आँखों में झिलमिलाता है
अन्य किसी संध्या का आलोक
चिरकालीन स्थिर वह आलोक;
सर्वस्व त्याग कर
एक दिन शान्त हो जाऊँगा मैं;
उस शिशिर की रात्रि में,
सुनहरी किमियागिरी का काम छोड़कर,

दीपक बुझा दूँगा
शय्या पर सोकर;
अँधेरे को ठोकर मार
जाग्रत रहूँगा मैं,
आसमान में
उल्टा लटके चमगादड़ की मानिंद,
चिरशान्ति कब आओगी तुम
बोलो तो...! ❑

प्रगतिवादी जनवादी कवि होने के कारण प्रेम सम्बन्धों का जनवादी रूप ही केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में व्यक्त हुआ है अर्थात् शुद्ध, विलास भावना से प्रेरित यह प्रेम नहीं होता। केदार ने प्रेम सम्बन्धों में स्वकीया प्रेम को ही मान्यता दी है और दाम्पत्य प्रेम के माध्यम से ही जीवन के मानवीय प्रेमिल पक्ष को व्यक्त किया है। उन्होंने व्यक्तिगत दाम्पत्य जीवन को भी व्यापक जन-जीवन एवं प्रकृति से जोड़कर देखा है। इससे इनके काव्य में एक प्रकार की ऐसी सहजता दिखाई देती है जो अन्य कवियों के काव्य में दुर्लभ है।

केदारनाथ अग्रवाल
काव्य में प्रेम का सामाजिक स्वरूप

प्रेम जो साहित्यिक भाषा में रागात्मकता का पर्याय है। वह मनुष्य के हृदय की स्वतःस्फूर्त और संवेदनात्मक अनुभूति है जो सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ-साथ अनेक रूपों और अर्थ सन्दर्भों में निरन्तर विकसित होती रहती है। सांस्कृतिक वर्चस्वों के विविध आयामों में विकसित होता हुआ प्रेम मनुष्य को मानवता की सीख देता हुआ संसार के सभी प्राणियों में स्पंदित हो रहा है। प्रेम की महत्ता, गहनता एवं व्यापकता की बहुआयामी व्याख्या समय-समय पर विभिन्न रूपों में होती रही है। मनुष्य का मनुष्य से प्रेम हो या मनुष्य का प्रकृति से, समय एवं आवश्यकता ने ही इसे नवीन अर्थवत्ता प्रदान की है। केदारनाथ अग्रवाल ने 'आत्मगंध' की भूमिका में लिखा है, "प्रेम है क्या? यह एक का किसी दूसरे से सम्बद्ध होना है। दो आत्मीय इकाइयों का एकात्म होना है। यह देवताओं की दुनिया का प्रेम नहीं है कि उन्हें प्रेम करो और आदमी को बिसार दो, सतत उसकी उपेक्षा करते रहो। इतना ही नहीं, प्रेम मानवीय चेतना की परम उपलब्धि है जिसे प्राप्त कर आदमी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है। जो आदमी सृजनधर्मी है और चेतना को मानवीयता से सम्प्रेषित करता चलता है वही तो अपने सृजन के बल पर मरकर भी नहीं मरता। वही मृत्यु पर जीवन की जय की घोषणा करता है।" (केदारनाथ अग्रवाल, 'आत्मगंध')। प्रेम को मृत्यु पर विजय का नाम देने वाले कवि ने प्रेम को ईश्वरीय

गोपाल यादव
ई-मेल : gopal.yadav60@gmail.com

परिधि में न समेटकर सामान्य मनुष्यों तक इसका विस्तार किया है।

वस्तुतः प्रगतिशील कविता की प्रेम भावना रीति-काल, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और छायावादी युग की प्रेम भावना से भिन्न रही है क्योंकि उसमें न तो रीतिकाल की रसिकता है, न द्विवेदी युग की नैतिकता और न ही छायावाद की रूमानीयत, वरन् इनका प्रेम वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक, शुद्ध, निर्मल और यथार्थ के धरातल पर टिका हुआ प्रेम है। यहाँ आकर दाम्पत्य प्रेम, प्रकृति प्रेम, पारिवारिक प्रेम और मानव प्रेम सब एक हो गए हैं। प्रगतिशील कवि अपने काव्य में जब भी प्रेम का चित्रण करता है तो संयम और स्वस्थ मनोवृत्ति का चरित्र गढ़ता है। प्रगतिशील कविता किसानों, मज़दूरों और बुद्धिजीवियों के साथ-साथ साधारण जन की कविता है, इसीलिए इनकी कविताओं में मानवीय प्रेम का, दाम्पत्य प्रेम का वर्णन अधिकाधिक हुआ है। इनके प्रेम पर भी बदलते सामाजिक सन्दर्भों एवं वातावरण का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। यही कारण था कि हिन्दी कविता में पहली बार राजाओं, सामन्तों, अवतारी पुरुषों आदि को छोड़कर साधारण जनों के प्रेम को अंकित किया गया जो विलासिता के रूप में हमारे सामने नहीं आता, वरन् मानवीयता के साथ स्वस्थ सामाजिकता और दाम्पत्य जीवन से युक्त मानवीय मूल्य के रूप में आता है।

युवा केदारनाथ अग्रवाल
(1 अप्रैल, 1911 - 22 जून, 2000)

सामाजिकता और दाम्पत्य जीवन से युक्त स्वस्थ वर्णन केदारजी की स्वस्थ मनोवृत्ति का ही परिचायक है। अपनी कविताओं में प्रेम के व्यापक आयाम को संतुलित और सभी रेखाओं द्वारा व्यक्त करते हुए कवि केदार प्रेम के ऐसे विराट रूप को सामने उपस्थित कर देते हैं जहाँ उनकी प्रिया की सुन्दरता धरती और प्रकृति के समस्त उपादानों में परिलक्षित होने लगती है। इसी कारण इनका प्रेम वास्तविक जीवन से कटे प्रेमी-प्रेमिका का रूप नहीं है वरन् सामाजिक-पारिवारिक जीवन की पृष्ठभूमि पर साथ चलते हुए उसके विरुद्ध संघर्ष करते हुए प्रेमी-प्रेमिका का रूप है। मधुछन्दा ने लिखा है, "केदारनाथ अग्रवाल की प्रेम दृष्टि पूरी तरह से सामाजिक और मर्यादित है। इनकी कविताओं में नायक- नायिका के प्रेम सम्बन्धों में असामाजिकता देखने को भी नहीं मिलती है। प्रेमी युगल सर्वत्र एक-दूसरे के सम्मान की रक्षा करते हुए दिखाई देते हैं। प्रगतिवादी जनवादी कवि होने के कारण प्रेम सम्बन्धों का जनवादी रूप ही इनकी कविताओं में व्यक्त हुआ है अर्थात् शुद्ध,

विलास भावना से प्रेरित यह प्रेम नहीं होता। केदार ने प्रेम सम्बन्धों में स्वकीया प्रेम को ही मान्यता दी है और दाम्पत्य प्रेम के माध्यम से ही जीवन के मानवीय प्रेमिल पक्ष को व्यक्त किया है। उन्होंने व्यक्तिगत दाम्पत्य जीवन को भी व्यापक जन-जीवन एवं प्रकृति से जोड़कर देखा है। इससे इनके काव्य में एक प्रकार की ऐसी सहजता दिखाई देती है जो अन्य कवियों के काव्य में दुर्लभ है।"

(मधुछन्दा, 'श्रम का सौन्दर्यशास्त्र और केदारनाथ अग्रवाल का काव्य')

स्पष्ट है कि कवि केदार परकीया प्रेम के विरुद्ध स्वकीया प्रेम की एक ऐसी मिसाल पेश करते हैं जो सामाजिकता और मानवीयता से ओत-प्रोत है। केदारनाथ अग्रवाल विवाह जैसे सामाजिक सम्बन्धों में भी अपनी प्रिया को याद करते हुए ख़ुशी से पागल हो जाते हैं और अपनी प्रिया को कभी अपने से अलग न करते हुए कहते हैं–

'हम दोनों का ब्याह हुआ है,/मैं पति हूँ-अब तुम पत्नी हो!/ आज ख़ुशी से पागल सागर/उमड़-उमड़कर मन के भीतर/जीवन की नदिया से मिलता,/जीवन की नदिया से कहता,/'मेरे आलिंगन में आकर,/मेरे अंग से अंग मिलाकर/ अपनी सुधि-बुधि सब खो डालो,/फिर न अलग हो, गले लगा लो।'

('जमुन जल तुम', पृ. 63)

केदार इस वैवाहिक सम्बन्ध को प्रेम के इस प्रथम स्वरूप को आजीवन अपने साथ लेकर चलना चाहते हैं। इस प्रथम-प्रेम को अमरता प्रदान करते हुए कहते हैं–

'जिस दिन, जिस क्षण, जिस साइत में,/मेरा पाणिग्रहण हुआ एक अलौकिक पूर्ण सुन्दरी का/उर में आगमन हुआ/ दुपट्टे-चुँदरी का गठबन्धन,/मेरा जीवन-वरण हुआ/प्रथम प्रेम का वह मेरा दिन/अमर मधुर संस्मरण हुआ।' (केदारनाथ अग्रवाल, 'गुलमेंहदी')

प्रेम के स्वरूप को परिवार के साथ जोड़कर देखना कवि के प्रेम का सामाजिक रूपान्तरण है। कवि का प्रेम-विवाह के सम्बन्ध से उद्‌भुत गार्हस्थिक प्रेम है तभी तो विवाह की रस्मों के बीच प्रेम पनपा है और सच कहें तो प्रेम में विवाह सम्पन्न होता है–

'मैंने प्रेम अचानक पाया/गया ब्याह में युवती लाने,/प्रेम ब्याह कर संग में लाया।/ घर में आया, घूँघट खोला,/आँखों का भ्रम दूर हटाया/प्रेम-पुलक से प्रेरित होकर/प्रेम-रूप को अंग लगाया।" (वही, पृ. 74)

केदार का यह प्रथम प्रेम केवल प्रेम मात्र नहीं है बल्कि एक परम्परा है जो स्वकीया प्रेम को उदात्त रूप प्रदान करता है। वे अपनी पत्नी का ख़ूबसूरत चित्र खींचते हैं और उसे 'जीवन वरण' तथा 'अमर मधुर संस्मरण' जैसे पदों से विभूषित करते हैं। यही कारण है कि कवि केदार प्रेम की इस धारा में इस प्रकार डूब जाते हैं जैसे सिन्धु में सम्पूर्ण–

'मैं गया हूँ डूब/इतना डूब/तेरी बाहुओं में,/लोचनों में,/ कुन्तलों में,/गिरि गया है डूब/जितना/सिन्धु में सम्पूर्ण/ सदियों पूर्व/ और अब भी/मग्न है बेऊब!'

(रामविलास शर्मा, 'प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल', पृ. 293)

रति-प्रसंगों को भी केदार जितनी शालीनता और सजगता के साथ उकेरते हैं वह हिन्दी कविता ही नहीं, उनके समय की सभी भारतीय भाषाओं की कविता में विरल है। रामविलास शर्मा ने लिखा है, "प्रेम की

एक औपचारिक बैठक - नामवर सिंह, शीलजी, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, चन्द्रबली सिंह, सुधीर कुमार सिंह तथा अन्य

गहराई, दो व्यक्तियों का एकात्मभाव मानव जीवन को सार्थक करता है, सीमित जीवन की यह सार्थकता मृत्यु की महाशून्यता को चुनौती देती है।" (वही, पृ. 71)

केदारजी अपनी इन पंक्तियों में इसी सन्देश को दृढ़ता के साथ अभिव्यक्त करते हुए कह रहे हैं–

'रेत मैं हूँ-जमुन जल तुम!/मुझे तुमने/हृदय तल से ढँक लिया है/और अपना कर लिया है/अब मुझे क्या रात-क्या दिन/क्या प्रलय-क्या पुनर्जीवन!/रेत मैं हूँ-जमुन जल तुम!/ मुझे तुमने/सरस रस से कर दिया है/छाप दुःख-दव हर लिया है/अब मुझे क्या शोक-क्या दुःख/मिल रहा है सुख-महासुख!' ('जमुन जल तुम', पृ. 121)

यह स्वकीया प्रेम की ही नहीं अपितु प्रेम का अपना ही एक विशिष्ट ढंग है, जो केदारजी की विशेषता है। कवि का जीवन रेत था, पत्नी ने उसे अपने प्रेम-जल रूपी रस से सिक्त करके सम्पूर्ण दुःखों का हरण कर लिया है और सुख का अपार सागर दे दिया है। शोक या दुःख का कोई चिह्न ही नहीं है। यह रमणीयता और उदात्तता का श्रेष्ठ उदाहरण है जिसे प्रेम प्रसंग में एक साथ पाना आसान नहीं होता किन्तु कवि केदार ने इसे एक साथ कर दिखाया है। यह साधने की प्रक्रिया ही कवि को एक शक्ति और विश्वास देती है जिसके बलबूते पर कवि केदार काल के कठोर पंजे से भी अपने प्रेम को जीतने की बात करते हुए कहते हैं–

'हे मेरी तुम/काल कलूटा बड़ा क्रूर है/उसका चाकू और क्रूर है- उससे ज़्यादा/लेकिन अपना प्रेम प्रबल है/हम जीतेंगे काल क्रूर को;/उसका चाकू हम तोड़ेंगे:और जिएँगे;/सुख-दुःख दोनों,/साथ, पिएँगे/काल क्रूर से नहीं डरेंगे-/नहीं डरेंगे-/नहीं डरेंगे।'

('हे मेरी तुम', पृ. 14)

प्रेम के बल पर से काल से लड़ने की यह संकल्पना नितांत नई है। काल की क्रूरता केदार कम करके नहीं आँकते। यही उनमें और प्रेम पर लिखने वाले अन्य कवियों में अंतर है। यह उनकी सौन्दर्य-चेतना की अद्वितीय भूमि है। रामविलास शर्मा ने लिखा है, "केदार की प्रेम सम्बन्धी कविताओं का सामाजिक महत्व कम नहीं है। इनमें युवकोचित काम चेतना की सहज अभिव्यक्ति हुई है, प्रसादजी ने जिस आनन्दवाद की चर्चा की थी, उसका प्रसार इन कविताओं में है। यहाँ प्राकृतिक परिवेश का उल्लास और नर-नारी के मिलन का उल्लास घुल-मिलकर एक हो गए हैं। यह घुलना-मिलना रीतिवादियों के उद्दीपन विभाव से कोसों दूर है। प्रसाद और निराला की परम्परा से सम्बद्ध, सूरदास की बार-बार याद दिलाने वाली, ये कविताएँ हिन्दी की सामन्त विरोधी काव्यधारा के अंतर्गत आती हैं। हिन्दी प्रदेश से बाहर राधा परकीया हैं, सूरदास ने कृष्ण से ब्याह कराके उन्हें स्वकीया बनाया था। शुक्लजी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में बताया था कि स्वकीया प्रेम के गीत हमारे गाँवों में प्रचलित हैं। केदार की प्रेम सम्बन्धी कविताएँ उस स्वकीया गीत परम्परा के अनुरूप हैं।"

(रामविलास शर्मा, 'प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल' पृ. 92)

यह सही है कि केदार की प्रारम्भिक कुछ कविताओं पर रूमानियत का प्रभाव देखा जा सकता है लेकिन जैसे-जैसे कवि के अनुभव और चिन्तन का दायरा आगे बढ़ता गया है वैसे-वैसे कवि की परिधि सामाजिकता की ओर बढ़ती चली जाती है। कवि ने प्रौढ़ अवस्था में पत्नी-प्रेम की एक छवि को इस प्रकार उजागर किया है–

'हे मेरी तुम!/कल क़मीज़ में बटन नहीं था/कुरता देखा तो आगे से फटा हुआ था,/धोती में कुछ दाग़ पड़े था/....आलू और अनाज ख़त्म था;/.....हाय राम! मेरी आफ़त थी;/ अब बोलो तुम कब आओगी/घर सँवारने?।' ('गुलमेंहदी', पृ. 177)

पत्नी के न होने पर सब कुछ अव्यवस्थित है तभी तो वे अपनी पत्नी को याद करते हुए कहते हैं, "तुम कब आओगी अपने घर को सँवारने के लिए।" केदार प्रिया को आत्मा के स्तर पर अपने अस्तित्व को समाहित करते हुए कहते हैं–

'तुम आ गई हो मेरे अस्तित्व में/अपने अस्तित्व से निकलकर/ भरपूर बढ़ रहे अपने व्यक्तित्व के साथ/जहाँ व्याप्त हूँ मैं।'

('रामविलास शर्मा, प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल', पृ. 297)

कवि की प्रेम कविताओं में सामाजिकता उसी प्रकार समाहित है जैसे उनकी अन्य विषयों पर लिखी कविताओं में समाहित है। अशोक त्रिपाठी लिखते हैं, "केदारजी प्रेम को जीवन की सच्चाई के रूप में ज़रूरत के अनुरूप, सामाजिक सरोकार से जोड़कर देखते हैं, उनका प्रेम कभी-कभार दूध के उबाल की तरह नहीं है। वह तो सतत प्रवाहित होने वाला, प्रिया की हमेशा कामना करने वाला, अविच्छिन्न सान्निध्य चाहने वाला प्रेम है... उनका प्रेम सामाजिक इकाई की महत्वपूर्ण संस्था परिवार के बीच बढ़ने पनपने वाला प्रेम है।"

(अशोक त्रिपाठी, 'केदारनाथ अग्रवाल लड़े द्वंद्व से कविता बनकर', पृ. 75)

इस प्रकार से प्रेम में सामाजिकता कवि केदार की अद्वितीय उपलब्धि है–

लोकतन्त्र में फैली हुई विषमताओं के साथ ग़लत दिशा में दुनिया को दौड़ते देख कवि जीवन में प्रेम के अलावा और कोई विशेष उपलब्धि नहीं देखता। केदार के काव्य-संसार में प्रेम के अनेकों रूप की चर्चा में पत्नी के वियोग में लिखी गई अनेक कविताएँ भी आती हैं जो प्रकृति के अनेकानेक बिम्बों के माध्यम से व्यक्त हुआ है। प्रकृति के साथ कवि का मन भी मुग्ध होकर वियोग की स्थिति में नर्तन करने लगता है। अपनी प्रिया के साथ स्मृति-सागर में ग़ोते लगाता रहा। 'मेरी नींद और मैं' कविता की ये पंक्तियाँ इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं–

'ऐसा कुछ हुआ/कि नींद तो मेरी/तुम्हारे घर में डेरा डाले रही/और मैं,/अकेला,/जलते पलाश-वन में/इधर-उधर घूमता रहा/तुमसे दूर-/तुम्हारा एहसास लिए-/साँस-साँस में तुम्हें जिए/गूँजता रहा।'

('पंख और पतवार', पृ. 52)

प्रियतमा के वियोग में, प्रियतमा के एहसासों के साथ झूमने वाला यह कवि उदास होकर यह कहने में भी नहीं हिचकता कि जब वह उसके पास नहीं होती तब सब कुछ उसके पास होते हुए भी उसके पास कुछ नहीं होता है–

'सब कुछ है/मगर कुछ नहीं है/जब तुम नहीं हो मेरे पास/ फूल खेत/हँसता चाँद/झरते मेघ/मन है बहुत उदास/अपनी देह/अपना गेह/मन का देश/सब कुछ हुआ विदेश'

(रामविलास शर्मा, 'प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल', पृ. 298)

जब पत्नी-प्रियतमा कवि के पास नहीं है उस समय संयोग के क्षणों को याद करके प्रिया को उपालम्भ देते हुए कवि कहता है–

'हे मेरी तुम/पंख फुलाए हुए कबूतर और कबूतरी/खुली धूप में बड़े प्यार से दाने चुगते/और गुटर गूँ करते-मिलते-रसियाते है!/इन्हें देखकर मुझे देखना,/मुझे देखकर इन्हें देखना,/फिर मेरी बाँहों में आकर/मुझे भेटना/अब क्या वह तुम भूल गई हो?'

('जमुन जल तुम', पृ. 120)

केदारनाथ अग्रवाल संसार के उन बिरले कवियों में शुमार हैं जिन्होंने प्रेम को अपने जीवनचर्या की सम्पूर्णता में देखा। इनके घरू प्रेम के दायरे में घर-परिवार, खेत-खलिहान, फ़सलें, नदी-नाले, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, फूल-पत्ती आदि से सराबोर जनपदीयता की केवल सामाजिकता ही नहीं समाहित है बल्कि एक-मेक होकर रूपायित हुई है। केदारजी अपनी रचनाओं में प्रेम के सामाजिक स्वरूप को उकेरने वाले श्रेष्ठ कवि हैं। ❑

'पुस्तक आजकल' में समीक्षा के प्रकाशन हेतु पुस्तक की दो प्रतियाँ 'आजकल' कार्यालय के पते पर भेजना अनिवार्य है। पाठकों के समक्ष निष्पक्ष मूल्यांकन प्रस्तुत करने के उद्देश्य से समीक्षा के लिए समीक्षकों को पुस्तक आबंटन 'आजकल टीम' द्वारा ही किया जाएगा।

बंगाल का कृषि लोक पर्व

'टुसू' और उसके गीत

अगहन मास के संक्रांति के दिन 'टुसू पाता' (टुसू प्रतिष्ठा किया जाना) जाता है और पूरे पौष मास में संध्या वंदना और टुसू गीतों द्वारा उसकी पूजा की जाती है। कृषि कार्य की दृष्टि से बंगाल में यह धान काटे जाने और गोले में रखे जाने का समय है अर्थात् कृषि कार्य से क्षणिक विश्राम और गोले में अनाज रखे जाने के कारण आनंद का भी अवसर है। खेतों-खलिहानों में खटकर खाने वाले कृषि जीवी, मज़दूर, स्त्री-पुरुष टुसू पूजा के समय, दिन के अंत में टुसू गीत गाते हैं। ये गीत प्रतिदिन किए जाने वाले मेहनत के कारण होने वाले शारीरिक और मानसिक थकान को मिटाकर नई ऊर्जा और जीवन को स्वाभाविक गति और लय से भर देते हैं।

ग्राम बंगला में एक लोकोक्ति बहु प्रचलित है, 'बारो मासे तेरो पारबन' अर्थात् बारह महीने में तेरह पर्व। दरअसल बंगाल एक ऐसा प्राँत है, जहाँ बारह महीने में तेरह तरह के पर्व मनाए जाने की प्रथा प्रचलित है। हर महीने कोई-न-कोई पर्व। इसी क्रम में, ग्राम बंगला के दक्षिण राढ़ अँचल में मनाया जाने वाला 'टुसू' या 'तुसू' एक प्रमुख कृषि लोक पर्व है, जो पौष संक्रांति (मकर संक्रांति) के तीन दिन पहले से मनाया जाता है। इसका सम्बन्ध कृषि से होने के कारण ही लोकसाहित्य के विद्वानों ने 'टुसू' को कृषि पर्व के रूप में वर्णित किया है। प्रकृति में हमेशा अंत के साथ ही आरम्भ की शुरुआत हो जाती है। प्रकृति का चक्र इसी शाश्वत और सनातन नियम से बँधा हुआ है। इसी नियम के साथ समस्त प्राणियों का जीवन और कृषि कर्म एकांतिक रूप से जुड़ा हुआ है। यह कहा जाना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि आरम्भ एवं अंत और अंत एवं आरम्भ का आपस में गहरा योग है। प्रकृति ने अपने समस्त प्राकृतिक अवयवों और घटकों को, चाहे वह चर (constant) हो या अचर (variable), इन्हीं रूपों में अभिव्यक्ति दी है और इन्हीं रूपों में बाँध भी रखा है।

'टुसू' या 'तुसू' का सम्बन्ध फ़सल उगाने, नवान्न या अनाजों को पुनर्जीवन दिए जाने या गोले (अनाज की कोठरी) में अनाज भरे जाने से भले ही हो, पर टुसू पर्व बंगाल के लोकजीवन, ख़ासकर कृषि कर्म जीवन और कृषकों से गहरे रूप में जुड़ा हुआ लोक पर्व है। इस पर्व में बंग महिलाओं की भूमिका अनिवार्य रूप से

रंजना शर्मा
ई-मेल : ranjanapresi@gmail.com

टुसू विसर्जन के लिए जाते हुए

महत्वपूर्ण है। बाँग्ला लोकगीतकारों ने 'टुसू लोक पर्व' को व्याख्यायित करते हुए अपने अलग-अलग मतों का उल्लेख किया है।

शिवेंदु मान्ना के शब्दों में, "टुसू उत्सव के उद्‌भव की कहानी के मूल में प्रायः सभी विद्वानों ने फ़र्टिलिटी कल्ट, मैजिक पॉवर, हार्वेस्ट फ़ेस्टिवल को स्वीकार किया है। कृषकों का अधिक फ़सलों की कामना स्वाभाविक है। इसके अलावा पहाड़ी नदियों से मिलने वाले जल की सुविधा, धरती की उर्वरता, संतानोत्पत्ति, हिंस्र पशुओं से आत्मरक्षा तथा फ़सलों की रक्षा जैसे विचित्र उद्देश्यों का साधक व्रत 'टुसू' है।"

शान्ति सिंह के अनुसार, "'टुसू' नामकरण के पीछे कोल (ऑस्ट्रो-एशियाई) गोष्ठी का 'टूसा' (टूसाऊ) शब्द का प्रभाव रह सकता है। कोल भाषा में 'टूसा' शब्द का अर्थ 'फुल गुच्छ' होता है।"

"आदिवासी समाज में 'टुसू' शब्द का एक अन्य अर्थ 'पुतुल' (गुड़िया) भी है। धौलपुर, राँची आदि क्षेत्रों में यह 'पुतुल' अर्थ में भी प्रचलित है।" प्रमोद कुमार भौमिक का मानना है कि, "मुंडारी भाषा में पुतुल वाचक शब्द 'टुसू' से टुसू की उत्पत्ति हुई है।" सुहृद कुमार भौमिक इस मत का पोषण करते हुए कहते हैं, "बिहार के अनेक स्थानों में 'टुसू' अर्थात् 'पुतुल' ही टुसू विषयक पर्व है। इसमें सन्देह के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।"

दिनेंद्र कुमार सरकार 'टुसू ब्रतेर उत्सकथा' नामक प्रबन्ध में 'टुसू' का स्वरूप विस्तार करते हुए इसका सम्बन्ध मिस्र देश के देवता 'टेसूब' या 'टेसुबू' से जोड़ते हैं। वे टुसू उत्सव का उत्स बताते हुए कहते हैं, "वृषभवाहन त्रिशूलधारी शिव मूर्ति का प्राचीनतम रूप मिस्र के टेसूब या टेसुबू देवता हैं। टुसू उत्सव का नामकरण टेसूब से

टुसू पूजा करती हुई युवतियाँ

ही हुआ है (टेसूब> टेसू> टूसू> तुषू> टुसू)। 'टुसू' पश्चिम के प्रजनन देवता 'टेसूब' का अपभ्रंश रूप है। वर्तमान में टुसू देवी (नारी) रूप में पूजी जाती हैं, परन्तु इसके मूल रूप में देवता (पुरुष) टेसूब या शिवोपासना ही था। टुसू कृषि मूलक उत्सव नहीं है, यह संतान कामना के लिए किया गया कुँवारी उत्सव है।"

राढ़ संस्कृति विशारद मानिकलाल सिंह के अनुसार, "टुसू कृषि लक्ष्मी की वाणिज्य यात्रा है। टुसू के भेला में तूस (भूसा) रखा जाता है। (तूस+ला मिलकर 'तूसला' शब्द निर्मित करते हैं।) भेले (केले के पेड़ की जड़ की ओर के हिस्से को परत-दर-परत खोलकर निकाला जाने वाला छिलकानुमा अंश) के बीच में मिट्टी से बनी टूसु या तुसू आलोखोला (दीप) प्रज्ज्वलित कर उसे नदी में बहा दिया जाता है। आलोखोला में एकाधिक दीपाकृतियाँ वृत्ताकार रूप में सज्जित रहती हैं। बाँकुड़ा, मिदनापुर के कुम्हार प्रतिवर्ष इस तरह के आलोखोला बनाते हैं। बाँकुड़ा ज़िले के शुशुनिया गाँव के पथुरिया (बाउड़ी, खयरा आदि जनजातियाँ) पत्थरों की खुदाई करके वृत्ताकार आलोखोला बनाते हैं। इस दीप की परिधि में चौदह और मध्य में एक दीप प्रज्ज्वलित किया जाता है।"

मकर संक्रांति के समय होने वाली टुसू पूजा को व्रत माना जाए या नहीं, इस सन्दर्भ में बाँग्ला लोकगीतकारों में पर्याप्त मतभेद भी हैं। पल्लव सेन गुप्त 'पूजा पारबनेर उत्स कथा' ग्रन्थ में व्रत सम्बन्धी आलोचना करते हुए कहते हैं, "'व्रत' शब्द का अंग्रेज़ी अर्थ 'भाउ' (Vou) है। आकांक्षा पूर्ति के उद्देश्य से विशेष आचार पद्धति द्वारा कुछ समय तक के लिए किया जाने वाला अनुष्ठानिक कार्य के भीतर ही व्रत का मूल उत्स छिपा रहता

है। जादू शक्ति पर विश्वास की भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।"

विशेष अथवा निर्दिष्ट दिन/अवसरों पर धार्मिक लोकाचारों एवं शास्त्रीय पद्धतियों द्वारा किए जाने वाले आचार अनुष्ठान भी व्रत या पूजा के घेरे के भीतर आते हैं। मानव सभ्यता के आरम्भ से ही हमारे पूर्वजों ने नाना कर्मकाण्डों द्वारा प्रकृति की नाना प्रतिकृतियों के प्रति श्रद्धा, भक्ति, पूजा आदि भावों को प्रदर्शित किया है। इन भावों के भीतर प्रकृति के नाना रूपों से भय (आँधी, तूफ़ान, बिजली कड़कने की आवाज़ आदि) की बड़ी भूमिका थी। भय के मूल उत्स के रूप में विनाशकारी घटनाओं के घट जाने की आशंका मुख्य रूप से रही होगी। परवर्ती काल में अंधविश्वास, अंध आस्था, कुसंस्कार, जड़ता, अंधभक्ति आदि भाव धर्म एवं भक्ति के मूल भाव संग जुड़ते चले गए और जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र, सिद्धियों द्वारा चमत्कार तथा अन्य भौतिक, अधिभौतिक शक्तियों का भी समावेश होता गया। फलतः धर्म के भीतर नाना कर्मकाण्डों, शास्त्रीय पद्धतियों, लोकाचारों, लोक विश्वासों को आज धर्म के निजी स्वरूप में स्वाभाविक स्थान प्राप्त हो गया है। बंगाल में प्रचलित 'टुसू' या 'तुसू' पूजा भी इससे भिन्न नहीं है। 'नाना मुनि नाना मत' सर्वत्र निर्विवादित रूप से प्रचलित है और भारत जैसे विशाल देश में तो यह अत्यंत स्वाभाविक भी है।

बाँग्ला लोकगीतकार के अनुसार टुसू पूजा के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों के वर्ण्य विषयों में इतनी भिन्नता होती है कि यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठाया जाता है कि 'टुसू' को लोक पर्व या व्रत माना जाए या नहीं? वास्तव में राढ़ बंगला के कुछ अँचलों में जैसे, बाँकुड़ा पोरकुल टुसू मेला, पुरुलिया के कांसाईब्रिज टुसू मेला, दिगड़ी (गालूडी), जयदा (चांडिल), सतीघाट (तोड़ांगमूड़ी) या धौलभूम के किसी-किसी अँचल में टुसू जागरण की रात्रि में या टुसू विसर्जन के समय समूहबद्ध स्त्रियाँ अश्लील गीत गाती हुई भी देखी जाती हैं। इन्हीं गीतों के कारण अनेक लोकगीतकारों ने इसे व्रत मानने में आपत्ति जताई है पर सभी क्षेत्रों में टुसू के अवसर पर ऐसे गीतों के गाए जाने का प्रचलन नहीं है।

"वीरभूम, बाँकुड़ा, मिदनापुर, पश्चिम बर्धमान, हुगली आदि अँचलों में कृषि आधारित ग्रामीण समाज की स्त्रियाँ धार्मिक भाव से ही टुसू व्रत का पालन करती हैं। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार पश्चिमोत्तर बंगाल की ओर अर्थात् पुरुलिया संलग्न छोटानागपुर अँचल की ओर बढ़ने पर आदिवासी समाज में गाए जाने वाले टुसू गीतों में यौन स्वच्छंदता और कामोद्दीप्त करने वाले भावों का आधिक्य पाया जाता है। विनय महतो इस सन्दर्भ में अपना अभिमत देते हुए कहते हैं, "टुसू विसर्जन के पूर्व गाए जाने वाले गीतों में नारी देह को दृश्यमान करके गीतों तथा नृत्यों का आयोजन किया जाता है। इन गीतों और नृत्यों को अनेक विद्वानों ने भोंडा कहा है, परन्तु बात वैसी नहीं है। इस तरह नृत्यानुष्ठानों के माध्यम से यौन आचरण का अनुकरण करके भूमि की उर्वरकता और नवान्न उत्पाद को अभिव्यंजित किया जाना ही मूल उद्देश्य होता है। विश्व के लगभग

सभी देशों के आदिम जातियों में नवान्न उत्पाद को यौन क्रीड़ाओं से जोड़कर देखे जाने की प्रवृत्ति पाई जाती है।"

पृथ्वी को गर्भ धारिणी माँ के रूप में व्याख्यायित किए जाने के कारण उसकी कोख में पनपने वाले समस्त उद्‌भिज्जों को संतान रूप में स्वीकार किया जाता है। आदिवासी जनजातियों तथा ग्रामीण समाज में यह चेतना और अधिक गहराई से जुड़ी होती है। इन्हीं कारणों से मातृत्व एवं संतानोत्पत्ति की पूर्व कालिक प्रक्रियाओं को अधिक व्यापकता प्राप्त है। सृष्टि के लिए मातृ देह, चाहे वह पृथ्वी हो या स्त्री, उसे तैयार करने की आवश्यकता होती है। टुसू गीतों में इन वांछित इच्छाओं की भी अभिव्यक्ति होती है। धार्मिक अचार अनुष्ठानों को हमेशा शास्त्रीय पद्धति द्वारा सम्पादित किए जाने की प्रवृत्ति के कारण टुसू व्रत को भी इस दृष्टि से आँके जाने का प्रयास किया जाना स्वाभाविक है। फलतः के भीतर आपसी मतभेद पाया जाना भी स्वाभाविक है।

टुसू पर्व के अवसर पर धार्मिक लोकाचारों के साथ-साथ नाना वर्ण्य विषयों से सम्बन्धित (जिनमें समसामयिक राजनैतिक, सामाजिक विषय भी शामिल होते हैं) गीतों गाए जाने की भी प्रथा पाई जाती है। वैसे तो, बंगाल में लगभग हर अवसर पर गीत गाए जाने का प्रचलन है। कृषि लोक पर्व टुसू के अवसर पर भी विभिन्न प्रकार के गीत गाए जाते हैं, जिन्हें ख़ासकर स्त्रियाँ गाती हैं और जिसमें विशेष रूप से कुँवारी लड़कियाँ तथा नवविवाहित स्त्रियाँ शामिल होती हैं।

अगहन मास के संक्रांति के दिन 'टुसू पाता' (टुसू प्रतिष्ठा किया जाना) जाता है और पूरे पौष मास में संध्या वंदना और टुसू गीतों द्वारा उसकी पूजा की जाती है। कृषि कार्य की दृष्टि से बंगाल में यह धान काटे जाने और गोले में रखे जाने का समय है अर्थात् कृषि कार्य से क्षणिक विश्राम और गोले में अनाज रखे जाने के कारण आनंद का भी अवसर है। खेतों-खलिहानों में खटकर खाने वाले कृषि जीवी, मज़दूर, स्त्री-पुरुष टुसू पूजा के समय, दिन के अंत में टुसू/गीत गाते हैं। ये गीत प्रतिदिन किए जाने वाले मेहनत के कारण होने वाले शारीरिक और मानसिक थकान को मिटाकर नई ऊर्जा और जीवन को स्वाभाविक गति और लय से भर देते हैं। दैनिक जीवन के सारे अभाव, अनाहार, सुख दुःख और संघर्ष के भीतर ग्रामीण जन समाज अपना स्वरूप ग्रहण करता है। इसमें शहरी जीवन जैसा न तो भाग दौड़ है और न ही सुख-सुविधाओं का अंबार। इसलिए ग्रामीण जीवन के भीतर चलने वाले व्रतों, त्यौहारों, लोक उत्सवों, मेलों तथा हाटों आदि का बड़ा महत्व होता है। यह केवल मनोरंजन या मन बहलाव के साधन मात्र नहीं होते, इसमें जीवन के प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के भाव के साथ-साथ एक आत्मीय लगाव भी छिपा होता है। कविगुरु रवीन्द्रनाथ के अनुसार यही वह अवसर है जब आस-पास और दूर-दराज़ के गाँवों के लोगों से मेल-मिलाप होता है, आपसी भाईचारा बढ़ता है। औपचारिक सम्बन्ध अनौपचारिकता में बदल जाते हैं। एक-दूसरे के सुख-दुःख के

बारे में जानकारी मिलती है। इसीलिए ऐसे अवसरों का ग्रामीण जीवन में बड़ा महत्व होता है। इसमें जीवन को बचाए और बनाए रखने की क्षमता और संघर्ष करने की दुर्दम शक्ति छिपी होती है। यही कारण है कि फ़सल काटा जाना, गोले में भरा जाना केवल कृषक का ही नहीं, समूचे कृषक परिवार की ख़ुशी का कारण होता है, समूचे गाँव में आनंद का माहौल होता है।

बंगाल में टुसू को 'फ़सलों का उत्सव' कहा जाता है।

टुसू पूजा के लिए मूलतः कुँवारी लड़कियाँ और नवविवाहित स्त्रियाँ अगहन संक्रांति के दिन धान के तूस (भूसा) से टुसू की प्रतिष्ठा करती हैं। 'टुसूखला' अर्थात् टुसू पात्र में काड़ोली बछड़े के गोबर की पाँच, सात या नौ की संख्या में छोटी-छोटी लोई बनाकर रखी जाती है और उस पर दूर्वा, कौड़ी, आतप चावल, सरसों, मूली, गेंदा, अकवान के फूल, सिंदूर आदि माँगलिक द्रव्यों से सजाया जाता है। 'टुसूखला' को घर के आँगन में तुलसी चौरा के निकट प्रतिष्ठित किया जाता है। उसकी स्थापना के पूर्व उस जगह को खोड़ी माटी (विशेष प्रकार की सफ़ेद मिट्टी) से लेपकर उस पर आलपना (रंगोली) सजाई जाती है। आलपना के रूप में लक्ष्मी के पाँव, धान की बालियाँ, फूल आदि माँगलिक प्रतीक बनाए जाते हैं।

फ़सल उत्पादन की देवी टुसू की पूजा प्रातः काल के बजाय संध्या समय की जाती है। गाँव की लड़कियाँ और नवविवाहित स्त्रियाँ संध्या समय टुसूखला रखे हुए स्थान पर एकत्रित होकर करुणा मिश्रित स्वर में गाती है।

अगहन संक्रांति के दिन बाँकुड़ा तथा उसके पार्श्ववर्ती अँचलों के अनेक कृषि जीवी परिवार की स्त्रियाँ और लड़कियाँ इतु विसर्जन के जल और फूल से ही टुसू प्रतिष्ठापित करती हैं। बंगाल में 'इतु पूजा' की भी बड़ी महत्ता है। यह भी एक लोकपर्व ही है। 'इतु' शब्द को सूर्य का प्रति शब्द माना जाता है। प्राचीन काल में "समुद्रगुप्त के समकालीन पुष्कर्णाधिपति चन्द्रवर्मन के राज्य में शुशुनिया पहाड़ पर उत्कीर्ण विष्णुचक्र के टुसू आलोखोला में मिट्टी की वृत्ताकार प्रदीप मालाएँ जड़ित रहती थीं। विष्णुचक्र के समान सूर्य का अक्षायन भी उत्तरायण से दक्षिणायन तथा दक्षिणायन से उत्तरायण होता रहता है। सूर्य शक्ति का प्रतीक है। सूर्य के कल्याणकारी शक्ति के रूप में कृषि लक्ष्मी को चिन्हित किया जाता है। लोक विश्वास के अनुसार सूर्य के प्रचंड शक्ति को धरती धारण करने के कारण ही पृथ्वी पर जीव तथा उद्भिज्ज पनपते हैं।" अर्थात् पौराणिक काल से ही मनुष्य सूर्य तथा पृथ्वी के परस्पर सम्बन्ध द्वारा शक्ति और ऊर्जा के माध्यम से अनाज तथा अन्य वस्तुओं में रूपांतरित होने के रहस्य को जान लिया था। इसलिए संसार के समस्त जातियों में सूर्य के श्रेष्ठ और कल्याणकारी स्वरूप को स्वीकार किया गया है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार भी, आरम्भ से ही सूर्य प्रकाश का वनस्पति और प्राणी जगत से गहरा सम्बन्ध रहा है।

कई स्थानों में टुसू पर्व मकर संक्रांति के तीन दिन पहले से आरम्भ हो जाता है।

पहले दिन को 'आँवडी दिन' कहते हैं। इस दिन को घर की स्त्रियाँ और पुरुष लक्ष्मी देवी की आवाहन के दिन के रूप में मनाते हैं। दूसरे दिन को 'चाँवड़ी दिन' कहा जाता है। 'चाँवड़ी' अर्थात् 'चाहेन', इस दिन लक्ष्मी देवी की 'कृपा दृष्टि' माँगी जाती है। और तीसरे दिन को 'बाँऊड़ी दिन' कहा जाता है। इस दिन सभी गृहस्थ लक्ष्मी देवी को गृह बंदी के रूप में अर्थात् अचला की तरह गृह में ठहर जाए, इस रूप में पूजते हैं। लोक विश्वास के अनुसार लक्ष्मी देवी की कृपा से गृहस्थ के सारे अभाव मिट जाते हैं। इस दिन गाँव में सभी घरों की गृहिणियाँ सोने से पहले ढाई खर (बिचाली) से घर के सारे पात्र जैसे चावल की हाँडी, पानी के घड़े, पान का डब्बा, यहाँ तक की धान मराइ (धान रखने के पात्र) को भी बाँध देती हैं। उनका मानना है कि ऐसा करने से ये पात्र साल भर भरे रहते हैं। गृहस्थ जीवन में अभाव दिखाई नहीं देता है। बाँऊड़ी की रात में सोने से पहले सभी गृहस्थ घरों में, सारे सदस्य अपने पैरों तथा तलवे में सरसों का तेल ज़रूर मलते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से साल भर अपशक्तियों की नज़रें उन पर नहीं पड़ती हैं।

बाँऊड़ी के पहले, चाँऊड़ी के दिन से ही चावल कूटकर ग्रामीण अँचलों में पीठा, पूली, पायेस आदि पकाए जाने की तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं और बाँऊड़ी के दिन उसे पकाया जाता है। इसे लक्ष्मी देवी का 'भोग' या 'शीतल' कहा जाता है। बाँऊड़ी के रात ही 'टुसू जागरण' किया जाता है। इस दिन संध्या से रातभर 'टुसू जागरण के गीत' गाए जाते हैं। ग्रामीण लड़कियाँ तथा स्त्रियाँ अत्यंत चहल-पहल और मनोयोग से टुसू को सजाती हैं। सारा परिवेश फूलों से सज उठता है। टुसू को भोग स्वरूप नारियल और तिल से बनी घर की मिठाइयाँ चढ़ाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त चावल का भुना हुआ 'मुढ़ी' भी चढ़ाया जाता है। अगहन की सर्दियों वाली रात्रि में व्रतधारी स्त्रियाँ और लड़कियाँ करुणा मिश्रित स्वर में रातभर टुसू जागरण के गीत समवेत स्वर में गाती हैं। एक टुसू जागरण गीत गाती हुई व्रतकारी स्त्रियाँ कहती हैं–

'उठ् उठ् उठ् टुसू
तुमाय उठ कराइते आइसेछी
आमरा जे सोब साथी सोंगी
तोमर पूजाय बोइसेछि।'

(अर्थात् उठो-उठो टुसू। हम तुम्हें जगाने आए हैं। हम सब साथी-संगी मिलकर तुम्हारी पूजा के लिए बैठे हैं।)

प्रार्थना के स्वर में गीत गाती हुई स्त्रियाँ सभी देव-देवियों को स्मरण करती हैं। ग्रामीण जनमानस में प्रचलित देवियों के भव्य स्वरूप की वंदना करती हुई उनकी कृपा दृष्टि की भी कामना करती हैं।

टुसू लोकगीत सिर्फ़ ईश्वर वंदना गान नहीं है, वरन इसमें कामना, ईर्ष्या अभिमान के साथ-साथ साधारण नारी सुलभ मनोभाव तथा समसामयिक विषयों को भी यथेष्ट स्थान प्राप्त है। बंगीय लोक जीवन अन्य प्रान्तों के समान ही अपने आस-पास के बदलते माहौल और परिवेश की प्रति प्रतिक्रियाशील और समान रूप से प्रभाव ग्रहण करने वाला समाज है। कृषि आधारित बंगीय ग्रामीण समाज में शिक्षा की अग्रगति

और उससे होने वाले फ़ायदे को तेज़ी से पहचाना जा रहा है। परिणामस्वरूप इसका प्रभाव बाँग्ला लोकसाहित्य के भीतर मौजूद विपुल वर्णी लोकगीतों में भी निरंतर देखा जा रहा है। चाहे वह साक्षरता हो या वोटर लिस्ट में अँगूठा लगाने की बात हो। इन सभी से जुड़े गीत टुसू पर्व के समय गाए जाते हैं। टुसू मूलतः कृषि लक्ष्मी को केन्द्र में रखकर मनाया जाने वाला व्रत है। इसलिए टुसू के अवसर पर गाए जाने वाले लोकगीतों में कृषि कर्म और अनाज उत्पादन से जुड़ी बातें बार-बार उभर कर सामने आती हैं। लोक कवि की कल्पना में कृषि और कृषि कार्य से जुड़ी स्त्रियों की कार्य पद्धतियाँ और उसका रूप लावण्य एकाकार हो उठता है। यह केवल क्षुधापूर्ति ही नहीं वरन सृष्टि के आनंद से भी भर देता है। 'रूपसी बाँग्ला' के कवि जीवनानन्द दास 'धान भाना नारी' कविता में धान कूटने वाली स्त्रियों का उल्लेख करते हुए कहते हैं–

'आह्लादे अवसादे भोरे आसे आमार शोरीर,

चारिदिके् छाया-रोद– खूद-कूड़ो– कार्तिकेर भीड़ चोखेर सकोल क्षुधा मिटे जाय ऐईखाने,

एखाने होतेछे स्निग्ध कान,

पाड़ा-गाँव गाए आज लेगे आछे रूपोशाली धान भाना रूपोसीर शोरीरेर घ्राण।'

(अर्थात् आह्लाद और अवसाद से मेरा शरीर भरता जा रहा है, चारों ओर छाया, धूप, खुद्दी, भूसा मिलकर कार्तिक में भीड़ किए हुए हैं। आँखों की सारी क्षुधा यहाँ मिट जाती है। यहाँ के स्निग्ध गान कानों को सुख देते हैं। पाड़ा, गाँव के रुपहले शरीर से धान कूटे जाने की सुगंध आ रही है)।

वास्तव में कवि कार्तिक और अगहन महीने की ख़ूबसूरती को अनाज उत्पादकता और उससे जुड़ी हुई कार्य पद्धति में देख रहे हैं। अप्रत्यक्षतः क्षुधापूर्ति संसार के समस्त कार्यों के केन्द्र में है। कवि की कल्पना में खेत-खलिहानों में अनाज की ढेर ही कार्तिक के भीड़ हैं और ये सब मिलकर गाँव के रुपहले शरीर को अनाज की सुगंधि से सुगंधित कर रहे हैं।

लोक कवि की चेतना भी इसी भावना से प्रभावित होती हुई ग्रामीण समाज से कहती है–

'घरेर मोध्ये बागानबाड़ी कोर सर्बजन मिले।

दू दिन परे अन्नो कष्टो सोबी जाबे चोले

चासेई अन्नो चासेई बसन चासेतेई पालन करे

चासेर समान नाई तुलोना खेते पावे पेट भोरे।'

(अर्थात् भरपेट अनाज की जुगाड़ के लिए कृषि ज़रूरी है। लोक कवि का कहना है कि अपने घर के आँगन में ही जो ख़ाली ज़मीन है वहाँ भी अगर कुछ बोया जाए तो कुछ ही दिनों में भूखे पेट रहने की नौबत चली जाएगी)।

टुसू पर्व 'टुसू पाता' (प्रतिष्ठा) से आरम्भ होकर अंततः ग्रामीण जन समाज के समग्र चेतना से जुड़ जाती है। इसमें टुसू देवी को प्रसन्न करने की भावना एवं वंदना

है, तो साथ ही कम पढ़े-लिखे लोगों की संवेदना और चेतना के नाना स्वरूपों की अभिव्यक्ति भी, जहाँ ग्रामीण समाज अपने दैनिक जीवनचर्या से बाहर निकलकर देश एवं दुनिया से जुड़ता है। समसामयिक राजनैतिक, सामाजिक यथार्थ से टकराता है और लयबद्ध, छंदबद्ध स्वर में अपनी भावनाओं को लोक भाषा में अभिव्यक्त करता है। टुसू लोकगीतों के एक बड़े अंश में ग्रामीण स्त्रियों की आवाजाही जारी रहती है। दक्षिण-पश्चिम सीमांत बंगाल में टुसू विसर्जन के दिन समूहबद्ध युवतियों का झुंड कांसाई नदी तट पर टुसू आलोखोला लेकर गीत गाता हुआ जाता है।

टुसू के गीत वैविध्यमय होते हैं। विस्तीर्ण वन भूमि, पहाड़ी प्रांतर और ग्राम अँचल परिवेश में पली-बढ़ी युवतियाँ और युवक (ख़ासकर आदिवासी जनजातियाँ) अपने सहज प्रेम की अभिव्यक्ति टुसू भासान (विसर्जन) के दिन उचित अवसर जानकर करते हैं। इनके तात्कालिक भावावेगों में कामोद्गार भले ही अभिव्यक्त हो परन्तु इसमें अंततः प्रेम भावना ही अंतर्लीन रहता है, जिसका उदय सहज आकर्षण से आरम्भ होता है। इसी प्रकार के भाव बाँकुड़ा प्रान्त के काँसाई नदी के उपकुलवर्ती अँचलों में गाए जाने वाले टुसू गीतों में भी पाया जाता है लेकिन बाँकुड़ा प्रान्त के अन्यत्र या पश्चिम वर्धमान, हुगली, वीरभूम आदि ज़िलों में गाए जाने वाले गीतों में इन भावों का लगभग अभाव दिखाई देता है।"

कृषि जीवी समुदाय की चेतना प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से 'सर्वेनं सुखिन भवंतु' की विश्वजनीन चेतना से जुड़ी हुई है। जीवन के साथ उर्वरकता, उत्पादकता और उल्लास उत्सव का गहरा सम्पर्क है। लोकजीवन अपने जीवनचर्या में इसे किसी-न-किसी रूप में आज भी जोड़े हुए हैं। फ़सल बोया जाना, इसे पकते देखना कृषक जीवन का सम्भावित स्वप्न है और उसे काटकर घर लाना यथार्थ सुख। इस सुख के साथ कृषक का न सिर्फ़ अपने परिवार का भरण-पोषण जुड़ा होता है बल्कि वह सामाजिक दायित्व का भी निर्वाह करता चलता है। फ़सल उत्पाद भावना के साथ प्राण के उत्सव का निविड़ सम्पर्क है। कविगुरु रवीन्द्रनाथ इसे प्राणोत्सव के रूप में देखते हैं। वे कहते हैं, "पृथ्वी हमें जो अन्न देती है, वह सिर्फ़ हमारे पेट भरने के काम नहीं आती वरन् वह हमारी आँखों को सुख देती है। मन को भुलाए रखती है। आकाश से आकाश तक सूर्य किरणों की स्वर्ण राग, दिगंत से दिगंत तक खेतों में फैली पकी फ़सलों से मिलकर जो सोनाली रागनी का सुर बाँधती है, उसे मनुष्य केवल क्षुधापूर्ति के साधन के रूप में न ही देखता है न सोचता है। वह उत्सव का आयोजन करता है। वह उसमें लक्ष्मी के स्वरूप को देखता है, जो एक ही समय में, एक ही साथ सुन्दर और कल्याणकारी दोनों है।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बंगाल के दक्षिण-पश्चिम राढ़ अँचल का कृषि लोक पर्व 'टुसू' का सम्बन्ध भी ऐसे ही प्राणोत्सव से है जो व्रत या पूजा से आरम्भ होकर समस्त ग्रामवासियों के लिए अंततः आनंदोत्सव में तब्दील हो जाता है। ❑

मकर संक्रांति से झाँकता
हमारी संस्कृति का चेहरा

आदिम राग की खिचड़ी

यह खिचड़ी आदिम राग की है, हमारी साझा तहज़ीब की है, हमारी गंगा-जमुनी संस्कृति की है। दाल-चावल का गले मिल जाना एक जीवन्त सच है हमारी उत्सवजीविता का। यह प्रतीक ही हमारे टूटे और बिखरे हुए समय से लोहा ले सकता है। हाथ-पाँव गल रहे हैं लेकिन खिचड़ी से उठती भाप ऊष्मा दे रही है। एक पल सूरज आँच देता है तो दूसरे ही पल मोमबत्ती की लौ-सा थरथराने लगता है। पिछवाड़े का नीम रह-रहकर बादल का शॉल ओढ़ लेता है। टहनी-टहनी नीम की पत्तियाँ दाँतों-सी बजने लगती हैं।

मौसम करवट बदल रहा है। भगवान भास्कर मकर राशि में प्रवेश कर रहे हैं। किरणों ने सुबह का घना कुहरा तार-तार कर दिया है। धूप कुछ और चमकीली हो गई है और आसमान कुछ और नीला। उस नीले आसमान में पतंगें बिछ गई हैं। आसमान पर ही लाल, पीले, हरे, नीले, गुलाबी, बैंगनी, नारंगी रंगों को सहेजे एक भिन्न क़िस्म का इंद्रधनुष खिल उठा है। यह पतंगें हमारे सपनों की हैं। दूर गगन में उड़ती हैं तो हमारी उम्मीदों को पंख लग जाते हैं। कटकर गिरती भी हैं तो गंगा की लहरें खिलखिला उठती हैं। प्रयाग के पावन तट पर साधुओं का हल्का-फुल्का जमावड़ा भी शुरू हो गया है। हालाँकि सबकी आँखों में कोरोना की छाया दिख रही है, लेकिन त्योहार तो फिर त्योहार है। यही हमें उत्साह से जीवन जीने को प्रेरित करता है और हमारी ख़ुशी का सबब भी बनता है। लोकप्रिय ग़ज़लकार सूर्यभानु गुप्त का एक शे'र याद आता है–

'कंघियाँ टूटती हैं लफ़्ज़ों की
साधुओं की जटा है ख़ामुशी।'

यह गंगा-जमुना का संगम है। 'संगम' का मतलब ही है मेल -मिलाप। गंगा-जमुना के संगम में जो सरस्वती लुप्त हुई वही पन्त, निराला, महादेवी के रूप में उजागर भी हुई। मिलने का मतलब ही है खिचड़ी हो जाना। यह खिचड़ी का पर्व है। जैसे दाल-चावल आपस में घुल-मिलकर खिचड़ी का रूप ले लेते हैं वैसे ही हमारे रिश्ते-नाते इस तीज-त्योहार में अपने को समो लेते हैं। हमारी दादी एक कहावत सुनाया करती थीं–

'खिचड़ी के चार यार
दही पापड़ घी अचार।'

यह खिचड़ी साल-दर-साल आती है और हमारी ज़िन्दगी का स्वाद बढ़ा जाती है। हम उनकी बात नहीं करते जो डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाते हैं। बीरबल की खिचड़ी भला कौन भूल सकता है? यह सारी बातें तब समझ आ रही हैं जब हमारे बाल दाढ़ी भी खिचड़ी हो

यश मालवीय
ई-मेल : artiyash23@gmail.com

गए हैं। खिचड़ी हो जाना भी एक मुहावरा बन गया है। घाट-घाट का पानी पी चुके लेकिन अब हमें घर की ही खिचड़ी अच्छी लगती है, मद्धिम आँच में सीझी और पकी हुई। निदा फ़ाज़ली याद आते हैं–

'वक़्त ने मेरे बालों में चाँदी भर दी
इधर-उधर जाने की आदत कम कर दी।'

यह खिचड़ी आदिम राग की है, हमारी साझा तहज़ीब की है, हमारी गंगा-जमुनी संस्कृति की है। दाल-चावल का गले मिल जाना एक जीवन्त सच है हमारी उत्सवजीविता का। यह प्रतीक ही हमारे टूटे और बिखरे हुए समय से लोहा ले सकता है। हाथ-पाँव गल रहे हैं लेकिन खिचड़ी से उठती भाप ऊष्मा दे रही है। एक पल सूरज आँच देता है तो दूसरे ही पल मोमबत्ती की लौ-सा थरथराने लगता है। पिछवाड़े का नीम रह-रहकर बादल का शॉल ओढ़ लेता है। टहनी-टहनी नीम की पत्तियाँ दाँतों-सी बजने लगती हैं। ऐसे ही ठिठुरे हुए समय में बक़ौल हरिशंकर परसाई 'ठिठुरे हुए प्रजातन्त्र' को गरमाने के लिए खिचड़ी जैसे त्यौहारों की ग़ज़ल के शे'र की तरह आमद होती है। ज़िन्दगी में सहज ही एक सोंधापन घुल जाता है।

खिचड़ी तो हमारे लोकरंजन का पर्व है। हमारा लोक जो गाँवों में बसता है। हमारा मन ही वह किसान होता है जो हमारी चेतना में सभ्यता और संस्कृति के बीज बोता है। वह केवल अन्नदाता नहीं होता बल्कि हमारी हर आती-जाती साँस का माँगलिक साक्षी भी होता है। हम केवल मिट्टी में बीज नहीं बोते बल्कि अपनी चेतना में भी रोशनी के बीज बोकर अपने ज़ेहनों को रोशन कर लेते हैं। हमारे लोकमानस में सबसे करुण क्षण होते हैं बेटी की विदाई के। बिटिया की विदाई पर राजा जनक जैसे धीरोदात्त नायक की छाती भी दरकने लगती है। वह टकटकी बाँधकर सीता को देखते हैं और आँखें बादल बादल हो जाती हैं। महाकवि तुलसी को लिखना पड़ता है–

'सीतहिं देखि धीरता भागी
रहे कहावत परम् बिरागी।'

शकुन्तला की विदाई ऋषि कण्व का कलेजा भी चीर कर रख देती है। महीयसी महादेवी वर्मा भी विवश होती हैं कालिदास के छंदों का गीतिल अनुवाद करने को। बेटी के विवाह में खिचड़ी का प्रसंग और भी मन भर देने वाला होता है। एक और मार्मिक अभिव्यक्ति याद आती है–

'रो रहे थे सब तो मैं भी फूटकर रोने लगा
वैसे मुझको बेटी तेरी रुख़सती अच्छी लगी।'

खिचड़ी का पर्व आते ही यह सारे प्रसंग जैसे पेट में कलछुल चलाने लगते हैं। इस मर्म को माँ ही समझ सकती है जब वह अपनी पाली-पोसी बेटी विदा करती है तो बेटी के आँचल में दाल-चावल बाँध देती है। फफकते हुए डबडबाई आँखों से कहती है, "ससुराल जा रही हो दुलारी धिया मैंने तुम्हें अपने हृदय के सम्पूर्ण नेह के साथ जो खिचड़ी सौंपी है तुम अपने घर जाकर इसे पकाना। जैसे खिचड़ी में दाल-चावल घुल मिल जाते हैं तुम वैसे ही ससुराल में सबके साथ हिल-मिल कर रहना।" इस वात्सल्यमयी हिदायत पर हामी के रूप में धिया के होठ बस थरथरा कर रह जाते हैं और एक तनहा आँसू गाल पर ढुलक जाता है। यही हमारा पोंगल है, मकर संक्रांति है और खिचड़ी है। बेटी गुजरात के अहमदाबाद से पोंगल के सन्देश भेज रही है तो मैं प्रयाग के गंगा तट से बासमती चावल और अरहर की दाल बसन्ती की बनी खिचड़ी की सुगंध उसे भेज रहा हूँ। ये खिचड़ी वस्तुतः आने वाले वसन्त की आहट ही है, उसकी पूर्व पीठिका है। मकर संक्रांति को मधुमास की भूमिका भी कह सकते हैं। बहरहाल! मेरी तो खिचड़ी तैयार हो गई और अब मैं जा रहा हूँ उसके स्वाद की सुगंध में भीगने। ❑

पुण्यतिथि पर
प्रकाशन विभाग की पुस्तकें

महात्मा गाँधी चित्रमय जीवन गाथा

महात्मा गाँधी की 150 जयंती के अवसर पर प्रकाशन विभाग द्वारा अंग्रेजी पुस्तक 'गाँधी एलबम' का हिन्दी रूपांतर 'महात्मा गाँधी : चित्रमय जीवन गाथा' का प्रकाशन किया गया है। रूपांतरकार एन. सी. जोशी हैं। इस पुस्तक में 10 अध्याय हैं जिनमें गाँधीजी का संक्षिप्त जीवन परिचय और उनसे जुड़े चित्रों का संकलन है।

अठहत्तर वर्ष के अपने जीवन में महात्मा गाँधी जिन परिस्थितियों से गुज़रे, शायद ही उन जैसा कोई महान व्यक्ति वैसे हालातों से गुज़रा हो। एक मध्यमवर्गीय परिवार में जन्म और लालन-पालन होने से स्कूल जाने तक उनका रहन-सहन, पहनावा और खान-पान उस वर्ग के दूसरे बच्चों की तरह ही था। बाद में अध्ययन के लिए जब वे इंग्लैंड गए तो उन्होंने अपना पहनावा वहाँ की परिस्थितियों के अनुसार बदल लिया लेकिन खान-पान और दूसरे कुछ मामलों में वे जीवन के शुरू में सीखी हुई बातों का ही पालन करते रहे। वकालत करने के बाद भारत लौटने पर उन्हें भी इस पेशे की शुरुआती कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अफ्रीका में भारतीयों की स्थिति और उनके साथ होने वाले दुर्व्यवहार को देखते हुए यह ज़रूरी हो गया था कि वे भारत लौटने की जगह वहीं रुककर उनकी सेवा करें।

शासन के ख़िलाफ़ संघर्ष उनके जीवन में एक बड़ा परिवर्तन लाया। भारत लौटने तक वह एक संन्यासी बन चुके थे। असहयोग आंदोलन से भी उनके जीवन में एक और परिवर्तन आया, उनकी वेश-भूषा अब देश के सबसे ग़रीब और विनीत आदमी की तरह हो गई। सूती धोती ही उनका पहनावा बन गई, जो आख़िरी समय ईश्वर का नाम लेने तक उनके तन पर थी।

यह सब इन चित्रों में देखा जा सकता है, जो इस संग्रह में फिर से प्रकाशित किए गए हैं। महात्मा गाँधी के जीवन और उनकी शिक्षाओं के बारे में स्वयं गाँधीजी और दूसरों द्वारा बहुत कुछ लिखा जा चुका है और अब भी लिखा जा रहा है। इन छायाचित्रों में उनका यह जीवन परिचय, उनके बारे में लिखी जा रही या लिखी गई बातों के साथ मिलकर उपयोगी पाठ्य सामग्री बन गई है। ❑

समीक्षक : आभा गौड़

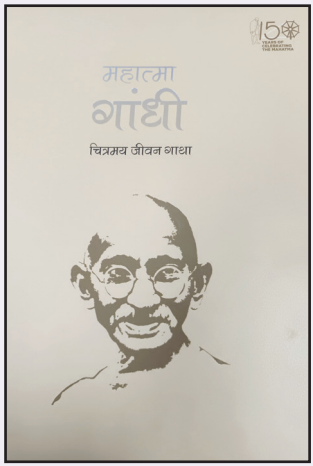

पुस्तक : महात्मा गाँधी : चित्रमय जीवन गाथा
पृष्ठ : 300; **मूल्य :** 2360 रुपये

पुस्तकें ख़रीदने और सूची देखने के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट publicationsdivision.nic.in देखें
वेबसाइट पर जाने के लिए QR कोड स्कैन करें।

पुस्तक को क्यों पढ़ें...

अपनी इस पहली पुस्तक में मोहन गुप्त ने अपने स्मृद्ध प्रकाशकीय जीवन के अनुभवों को संस्मरणों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है, जो सुखद और संस्मरण साहित्य में उनके योगदान को रेखांकित करने वाली है।

संस्मरणों की शृंखला

संस्मरण कुछ हद तक कथा या वृत्तांत से मिलती-जुलती विधा है। संस्मरण पढ़ना पाठक के लिए रुचिकर होता है, विशेषतः जब आप संस्मरणों में वर्णित व्यक्तियों से परिचित भी हों। मोहन गुप्त ताउम्र प्रकाशक रहे हैं और प्रकाशन से मुक्त होकर अपने प्रकाशकीय जीवन को कुछ मित्रों या सहयोगियों से जुड़ी स्मृतियों को उन्होंने इन संस्मरणों में समेटा है। शीर्षक से पता चलता है कि ये संस्मरण इतने गहरे हैं कि इन्हें लिखे बग़ैर लेखक अपनी आंतरिक बेचैनी से मुक्त नहीं हो सकता था। व्यक्तिगत बातचीत में भी मोहन गुप्त बहुत-सी यादों का पिटारा खोल कर घंटो बतिया सकते हैं, इसलिए उन्हें लेखन का रूप देना उनके लिए कोई कठिन बात नहीं थी लेकिन हज़ारों किताबों और सैकड़ों लेखकों को छापने के बाद उनके साथ हुए व्यक्तिगत और व्यावहारिक अंतर क्रिया को संस्मरणात्मक गद्य का रूप देना असम्भव तो नहीं, लेकिन चुनौतीपूर्ण काम अवश्य था।

मोहन गुप्त ने जिन छह व्यक्तियों और चार कवि/लेखकों के बारे में संस्मरण और प्रभाव लिखे हैं, उनमें दो तो उनके गहरे मित्र थे– भीमसेन त्यागी और शरद दत्त। शीला संधु के साथ उनका सबसे लम्बा प्रकाशन व्यवसाय का सम्बन्ध था। जिन चार कवि-लेखकों के बारे में पाठक के रूप में अपने प्रभाव उन्होंने लिखे हैं, वे गुप्तजी की सौन्दर्य मूलक साहित्यिक संवेदना का परिचायक है।

भूमिका की बजाय भावांजलि के रूप में शुरुआत मोहन गुप्त अपने स्कूल-कॉलेज के दिनों से करते हुए उन दिनों उनके ऊपर पड़े निराला काव्य के प्रभाव को अंकित करते हैं, जिसे बाद में उन्होंने राजकमल प्रकाशन के लिए निराला रचनावली के प्रकाशन के समय फिर वैसा ही आनंद महसूस किया। इस भावांजलि के सिलसिले को उन्होंने पुस्तक की अंतिम तीन छोटी टिप्पणियों में दोहराया है, जब उन्होंने सुमित्रानंदन पन्त के निधन पर

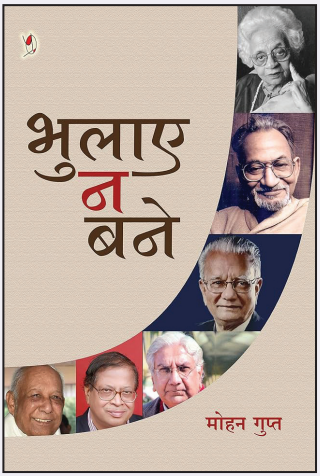

पुस्तक : भुलाए न बने (संस्मरण)
लेखक : मोहन गुप्त
प्रकाशक : प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता (पश्चिम बंगाल)
पृष्ठ : 170; **मूल्य** : 280 रुपये

दिसम्बर 1977 में शोकांजलि लिखी। पन्तजी के निधन के समय मैं जे.एन.यू. में भारतीय भाषा केन्द्र में छात्र था और तब केन्द्र द्वारा श्रद्धांजलि सभा में हम ज़्यादातर छात्र और अध्यापक शामिल हुए थे।

संस्मरणों की शृंखला में कुल छह संस्मरणों में से पहले दो संस्मरण उनके घनिष्ठ मित्रों–भीम सेन त्यागी और शरद दत्त पर हैं और आख़िरी और सबसे लम्बा संस्मरण राजकमल प्रकाशन की पूर्व मालिक शीला संधु पर है। परितोष चक्रवर्ती, दाऊजी गुप्त और रामनिवास जाजु उनके संस्मरणों के अन्य चरित्र हैं।

सबसे पहला संस्मरण मोहन गुप्त के कॉलेज के दिनों से चले आ रहे मित्र भीम सेन त्यागी का है, जिसका शीर्षक मानीख़ेज़ है, 'प्यास मेरी जो बुझ गई होती'। एक अपूर्ण प्यास की व्यथा-कथा है त्यागीजी की जीवन यात्रा, जिसे मोहन गुप्त ने सम्वेदना से शब्दबद्ध किया है।

दूसरा संस्मरण भी मोहन गुप्त ने अपने अन्य घनिष्ठ मित्र शरद दत्त पर लिखा है, जो मोहन गुप्त के जीवन संघर्ष में अटूट साथ देने वाला मित्र है। शरद दत्त दिल्ली दूरदर्शन के अधिकारी थे और उनसे मोहन गुप्त की मुलाक़ात कुछ विचित्र परिस्थिति में 1976-77 में हुई, जो उसके बाद मित्रता में बदल गई। शरद दत्त दूरदर्शन में सृजनात्मक काम करना चाहते थे, जबकि उन्हें ख़बरें सम्पादित करने पर लगाया हुआ था। उन्होंने अंततः साहित्यिक कार्यक्रम किए और कुछ की प्रस्तुति मोहन गुप्त ने की।

परितोष चक्रवर्ती नाम के युवा लेखक का संस्मरण भी मोहन गुप्त ने मन से लिखा है। इस युवा बंगाली लेखक को राजकमल प्रकाशन से नियोजित 'शरत चन्द्र रचनावली' के अनुवाद के लिए अनुबंधित किया गया था, जिसके लिए उसने बाक़ायदा अनुबंध पत्र माँगा क्योंकि उसे अपनी बीवी को दिखाना था। योजना पूरी नहीं हुई और न फिर उससे मोहन गुप्त की मुलाक़ात ही हुई। रामनिवास जाजु का सम्बन्ध राजस्थान से था, क्योंकि संस्मरण के अंत में जाजुजी 90 वर्ष की उम्र में दिल्ली से सोनीपत तक पैदल चलकर जाते दिखाए गए हैं, जो अनुभव और आर्थिक सम्पन्न व्यक्ति हैं। दाऊजी गुप्त लोहिया से प्रभावित समाजवादी लेखक हैं, जिन पर भी मोहन गुप्त ने ध्यान केन्द्रित किया है, उनकी सरलता की प्रति मूर्ति होने और निष्ठा और निस्वार्थ रूप में सामाजिक कार्य करने के लिए।

पुस्तक का अंतिम और सबसे लम्बा संस्मरण राजकमल प्रकाशन की लम्बे समय तक मालिक रहीं शीला संधु का है, जिनका निधन किताब छपने के बाद हुआ। ये संस्मरण मोहन गुप्त के लम्बे व्यावसायिक प्रकाशकीय जीवन की कथा भी है और शीला संधु के साथ बिताए उनके खट्टे-मीठे अनुभवों की कहानी भी। इन अनुभवों में शुरुआत मिठास से होती है और अंत खटास से। इस संस्मरण का शीर्षक भी अर्थपूर्ण है– 'मेरी एक दुविधा : नाम था शीला संधु'। उनके साथ गुप्तजी की 25 साल की सहयात्रा रही, जिसका अंत निराशाजनक रहा।

अस्ल में जब शीलाजी ने राजकमल को बेचने का निर्णय लिया तो मोहन गुप्त राजकमल से लम्बे जुड़ाव से चाहते थे कि शीलाजी इसे मोहन गुप्त को बेच दें, लेकिन कई कारणों से ये बात नहीं बनी, जिसका खुलासा भी मोहन गुप्त ने अपने संस्मरण में किया है। मोहन गुप्त ने शीला संधु के व्यक्तित्व की कई कमियों की ओर ध्यान दिलाते हुए उनकी आलोचना की है, लेकिन ये ध्यान रखा है कि वे भाषा संयम के दायरे से बाहर न जाएँ। ❑

समीक्षक : चमन लाल

ई-मेल : prof.chaman@gmail.com

पुस्तक को क्यों पढ़ें...

ओढ़ी हुई बौद्धिकता से कोसों दूर रहने वाले उद्भ्रांतजी की रचनाओं के माध्यम से उन्हें जानने का अवसर मिलेगा।

बेहतर होता अगर...

प्रस्तुतिकरण पर ध्यान दिया जाता और अनुच्छेद बनाए जाते जिससे पढ़ने में असुविधा नहीं होती।

चमत्कृत करता लेखन

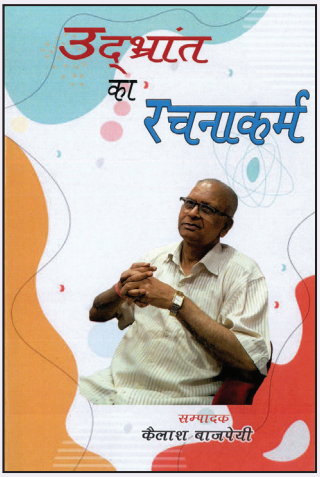

पुस्तक : उद्भ्रांत का रचनाकर्म
सम्पादक : कैलाश बाजपेयी
प्रकाशक : नमन प्रकाशन, 4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
पृष्ठ : 150; **मूल्य** : 245 रुपये

उद्भ्रांतजी के व्यक्तित्व के अनेक आयाम हैं। साहित्य की लगभग हर विधा में उन्होंने लिखा है। चाहे महाकाव्य हो या खण्डकाव्य, काव्य हो या नाटक, नवगीत, ग़ज़ल, समकालीन कविताएँ, संस्मरण, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, आलोचना, डायरी सभी पर उन्होंने क़लम चलाकर पाठकों और आलोचकों दोनों को ही चमत्कृत किया है। उद्भ्रांतजी को रचनाकार बनाने, उन्हें गढ़ने और तैयार करने में हरिवंशराय बच्चन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

'राधामाधव', 'त्रेता', 'रुद्रावतार' जैसे महाकाव्य और 'स्वयंप्रभा', 'वक्रतुण्ड' (खण्ड-काव्य), 'अनाद्यसूक्त' (आर्ष काव्य), 'ब्लैकहोल' (काव्य-नाटक), 'प्रज्ञावेणु' (गीता का मुक्तछन्द में यथारूप पुनर्सृजन), 'हम गवाह चिट्ठियों के' जैसी पुस्तकों के लेखक के रचनाकर्म पर बात करनी इसलिए ज़रूरी है ताकि नई साहित्यकार पीढ़ी उनके व्यक्तित्व के साथ-साथ उनके कृतित्व को भी समझ सके। इस पुस्तक में सम्पादक कैलाश बाजपेयी ने उद्भ्रांत के छह दशकों के विविध रचनाकर्म को समेटा है। विभिन्न आलोचकों और समीक्षकों के आलेख जो उनकी पुस्तकों के साथ-साथ उनकी लेखन शैली, दृष्टिकोण और साहित्य साधना को भी रेखांकित करते हैं, इसमें निहित हैं। पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड आलोचना है जिसमें 19 लेखकों की टिप्पणियाँ व उद्भ्रांतजी की रचनाओं का आलोचनात्मक विवेचन है। दूसरे खण्ड में संस्मरण और एक साक्षात्कार है।

इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि उद्भ्रांतजी किसी भी अर्थ में ठहराव के रचनाकार हैं ही नहीं, इसलिए उनके रचना-संसार को समझने के लिए उनकी मानसिक संरचना को जानना आवश्यक है। सेवाराम त्रिपाठी लिखते हैं, "उनका साहित्य एक कुटीर उद्योग की तरह है। कोई नहीं जानता कि उनकी रचनात्मक ट्रेन का अंतिम स्टेशन

क्या होगा। उनका कृतित्व इतना विपुल है कि उससे विपुलता तक थर्राती है।" (पृष्ठ 16-17)। उनका महाकाव्य 'त्रेता' राम कथा से जुड़े सभी नारी पात्रों को लेकर आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। करुणा शंकर उपाध्याय इसके विषय में सटीक विचार रखते हैं, "एक ऐसे दौर में जब उत्तर आधुनिक विचारक महावृत्तांतों के युग के समापन की घोषणा कर रहे हों तब वहाँ काव्य लिखना धारा के विपरीत तैरने के साहस की अभिव्यक्ति है।" (पृष्ठ 31)।

इस पुस्तक में प्रबन्ध काव्य 'राधामाधव' का उल्लेख कई लेखों में हुआ है, ख़ासकर आधुनिक सन्दर्भ में। उसके महत्व पर शैलेश पंडित का मानना है, "राधामाधव इस दौर में हमें जीवन का अर्थ देता है, एक राग देता है, रागोत्सव देता है और उस कथा के प्रति एक आस्था पैदा करता है जिसे हमारे लोकनायक माधव ने उत्फुल्लता से जिया है और जिसे वह हमारे लिए विरासत के रूप में सहेज गए हैं।" (पृष्ठ 57)।

दूसरी ओर रमाकान्त नीलकंठ मानते हैं, "'राधामाधव' काव्य का आरम्भ है। यह कवि उद्भ्रांत के हृदय के एकांत से फूटी एक निर्झर धारा है जो अलग ही रौ में बहती है। वह धारा जो कभी व्यास के, कभी जयदेव के, कभी विद्यापति के, सूरदास के, मीरा के, रसखान के रसोदात्त कंठ से फूटी थी" (पृष्ठ 58)।

कौशल किशोर का मानना है, "उद्भ्रांत ने क़दम-ब-क़दम आगे की यात्रा की है। इसे शून्य से शिखर की यात्रा या बीच से शिखर की यात्रा भी कह सकते हैं। मैं उन्हें 'शब्दसाधक' कहता हूँ। उनके लिए शब्द एक साधना है। इसे कैसे साधा जाए, यह एक चुनौती है। उद्भ्रांत उन विरले रचनाकारों में हैं जिन्होंने अपने अतीत और स्मृतियों को समेटा है। उनका भावनात्मक लगाव इस तरह का है कि उन्होंने कभी उसे विस्मृत नहीं किया।" (पृष्ठ 71)।

उद्भ्रांत कवि के रूप में जितने समर्थ हैं, गद्यकार के रूप में भी उतने ही सक्षम हैं और यह बात उनकी आत्मकथा जो दो खण्डों में है, से भी दृष्टिगोचर होती है। पहले खण्ड 'मैंने जो जिया है' की चर्चा अनीता वर्मा ने की है और वह हैरानी भी प्रकट करती हैं, "आत्मकथा पढ़ते हुए बहुत-से प्रश्न भी मन में उठते हैं जैसे कि उम्र के इस पड़ाव तक आते-आते क्या एक लेखक इतना बेबाक हो जाता है कि किसी भी प्रसंग को या जीवन में आए व्यक्ति विशेष से जुड़े अपने अच्छे-बुरे अनुभवों को बड़ी निर्ममता के साथ लिख देता है।" उनका दूसरा खण्ड 'किसी राह से गुज़रा हूँ' पर धीरंजन मालवे टिप्पणी करते हैं, "पहले खण्ड की भाँति दूसरे खण्ड में भी एक लय, एक गति, एक प्रवाह है जो अंत तक बहा कर ले जाता है।"

'रुद्रावतार' पर बात होना स्वाभाविक है क्योंकि यह कविता चमत्कृत करती है। 100 पंक्तियों में एक कथा का उन्होंने इसमें सृजन किया है। 1990 में लिखी गई यह कविता हनुमान के लोकोत्तर चरित्र की उद्भावनाओं को प्रकट करने वाली एक लम्बी मिथकीय रचना है।

आख़िर में शहँशाह आलम द्वारा एक विस्तृत साक्षात्कार है जिसमें उद्भ्रांतजी से उन्होंने अनेक तरह के प्रश्न किए हैं और उसमें वह स्वीकारते भी हैं कि वह मूलतः कवि ही हैं। उनके साहित्यिक अवदान ऐतिहासिक और साहित्य देवता को अविस्मरणीय पुष्पांजलि है।

शरद पगारे बहुत निष्पक्ष ढंग से अपनी बात कहते हैं कि उद्भ्रांतजी के साहित्यिक अवदान के मूल्यांकन के लिए हिन्दी साहित्य के स्ट्रक्चर को समझना ज़रूरी है। निस्सन्देह, उनकी रचनाओं का विश्लेषणात्मक संचयन है। ❑

समीक्षक : सुमन बाजपेयी

ई-मेल : sumanbajpai@gmail.com

पुस्तक को क्यों पढ़ें...

पुस्तक में हिन्दी-उर्दू की कुल 188 (94 हिन्दी और 94 उर्दू) ग़ज़लें-संग्रहीत हैं, जिनमें जीवन और जगत के विविध रहस्य उद्घाटित हुए हैं।

बेहतर होता अगर...

प्रस्तुत संकलन में हिन्दी-उर्दू की ग़ज़लें अलग-अलग सूची में दी गई हैं। ग़ज़ल को इससे मुक्त होने की ज़रूरत है। इरादतन हिन्दी या उर्दू ग़ज़ल कहना पाठकों के साथ ज़्यादती है।

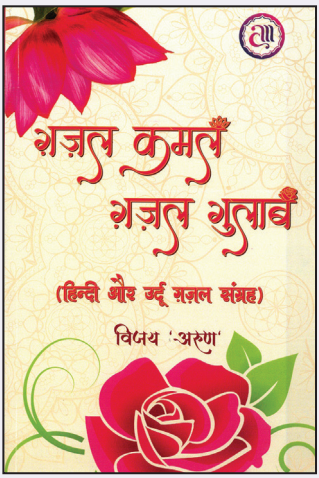

पुस्तक : ग़ज़ल कमल-ग़ज़ल गुलाब
ग़ज़लकार : विजय 'अरुण'
प्रकाशक : अद्धिक पब्लिकेशन प्रा.लि., 41-हसनपुर गाँव, आई.पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली-110092
पृष्ठ : 208; **मूल्य** : 300 रुपये

प्रेम, अध्यात्म और युगबोध की चाशनी

21वीं सदी में ग़ज़ल सबसे लोकप्रिय काव्य विधा बनकर उभरी है। छंद में लिखने वाले लगभग सभी कवि ग़ज़ल कहने लगे हैं। जीवन की प्राथमिकताएँ जिस प्रकार बदली हैं, उनमें किसी एक विषय पर ठहरकर देर तक सोचने और निष्कर्ष तक पहुँचने का समय नहीं रह गया है। ग़ज़ल कहने में यह सुविधा है कि दो पंक्तियों वाले हर शे'र के बाद किसी अन्य विषय पर बात की जा सकती है, बस रदीफ़, क़ाफ़िए और बहर का ख़्याल रखना है। हालाँकि ग़ज़ल की दुनिया में इतने मील के पत्थर हैं कि उनके समकक्ष या उनसे आगे निकलकर शायरी कर पाना एक बड़ी चुनौती है किन्तु कविता हर युग में अपने नए प्रतिमान गढ़ती है और अपने नए नुमाइंदों का इंतख़ाब करती है। वरिष्ठ शायर विजय 'अरुण' पिछले 60 सालों से ग़ज़लों पर काम कर रहे हैं। उर्दू के वरिष्ठ शायर और शोधकर्ता कालिदास गुप्ता 'रिज़ा' के प्रिय शिष्य के रूप में लम्बे अरसे तक उन्होंने शायरी की बारीकियाँ सीखी हैं। 'रिज़ा' साहब और उनका साथ नैरोबी में ही बन गया था, बाद में गुरु-शिष्य दोनों मुम्बई आ गए।

88 वर्ष की उम्र में विजय 'अरुण' का ये पहला काव्य-संग्रह, ग़ज़ल-संग्रह के रूप में 'ग़ज़ल कमल-ग़ज़ल गुलाब' के नाम से प्रकाशित हुआ है। पुस्तक में हिन्दी-उर्दू की कुल 188 (94 हिन्दी और 94 उर्दू) ग़ज़लें संग्रहीत हैं, जिनमें जीवन और जगत के विविध रहस्य उद्घाटित हुए हैं।

संसार को दुःखालय कहा गया है क्योंकि यहाँ सुख की अपेक्षा दुःख के लम्हे कहीं अधिक होते हैं, इस बात को शे'र की शक्ल में पुख्ता उदाहरण के साथ वे कहते हैं–

'दुःख की निस्बत सुख बहुत ही कम है इस संसार में
हो महाभारत कि रामायण यही पाया गया।'

कोई कलाविद् जब किसी सामंत का ग़ुलाम हो जाए तो विजय 'अरुण' की नज़र में उसकी कला-साधना में खोट आ जाता है–

'कलाविद् जब किसी सामंत की जागीर हो जाए
तो उसकी ही कला उसके लिए ज़ंजीर हो जाए।'

मनुष्य को देवता और दानव से श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए वे कहते हैं–

'कोई है देव तो कोई है दानव सृष्टि रचना में
मैं इन दोनों सिरों को जोड़ता हूँ और मानव हूँ।'

योग और प्राणायाम में हिन्दू-मुस्लिम कोण ढूँढने वालों के लिए वे कहते हैं–

'मैं तो करता हूँ 'अरुण' तुमसे ज़रा योग की बात
और तुम बीच में इस्लाम को ले आते हो।'

दीपक और आतिशबाज़ी की उपयोगिता का अत्यंत बारीक विश्लेषण करते हुए वे कहते हैं–

'हम दीपक ही बनें 'अरुण' जी और अंधेरा दूर करें
आतिशबाज़ी का क्या बनना जो इक पल का जलवा हो।'

कोरोना वायरस की भयावहता और उससे भी कहीं अधिक लेज़र की लड़ाई की कल्पना करते हुए शायर कहता है-

'कब बचपन में यह सोचा था यह भी मंज़र देखेंगे,
जंग बिना ही मरेंगे लाखों मातम घर-घर देखेंगे?
मरेंगे लोग न ख़ंजर से अब लोग मरेंगे लेज़र से
किन्ही अजायबघरों में ही अब रक्खे ख़ंजर देखेंगे।'

अमीरी आ जाने पर कुछ लोगों की ज़बान तल्ख़ हो जाती है। ऐसे लोगों के लिए वे कहते हैं-

'इन शरीफ़ों को नहीं बात भी करने की तमीज़
जो हो तहज़ीब से ख़ाली वो शराफ़त कैसी?'

दौलत की क़िस्मत पर तंज़ करते हुए वे कहते हैं-

'उससे इज़्ज़त भी है शोहरत भी है और ताक़त भी
ऐ 'अरुण' पाई है दौलत ने भी क़िस्मत कैसी?'

संग्रह में कुछ हास्य-व्यंग्य की ग़ज़लें भी शामिल हैं। नए युग के मजनू और विवाहित पुरुष की भागदौड़ को अपने शे'र में वे कुछ यूँ चित्रित करते हैं–

'इसे देखिए, यह है नए समय का छैला
कपड़ा जिसका घिसा-पिटा और मैला-मैला
वह है पुरुष विवाहित काम से जब घर लौटे
दौड़ा जाए, हाथ में हो भाजी का थैला।'

अभिनेता के जीवन की त्रासदी को बयान करते हुए वे कहते हैं–

'अरुण' के चेहरे पर मत जा, उसके तू दिल में झाँक
वह तो अभिनेता है, चेहरे से सदा मुस्काए।'

दुनिया में हर समस्या का समाधान है और हर मर्ज़ का इलाज है, इस विचार को एक शे'र में निरूपित करते हुए वे कहते हैं-

'लुक़मान को पता न हो यह बात है अलग
वैसे तो हर मर्ज़ का यहाँ पर इलाज है।'

विजय 'अरुण' के काव्य की विशेषता यह है कि उनका शिल्प पक्ष भी उनके भाव पक्ष जितना ही सुदृढ़ है, जो कि अधिकांश हिन्दी ग़ज़लकारों में देखने को कम ही मिलता है। उनकी ग़ज़लें प्रेम, शृंगार, अध्यात्म और युगबोध की चाश्नी में पगी हैं। पाठकों के लिए 'ग़ज़ल कमल–ग़ज़ल गुलाब' एक अनुपम सौग़ात है। ❑

समीक्षक : रासबिहारी पाण्डेय
ई-मेल : anushkamagazine@gmail.com

- **15वाँ अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति-सम्मान**

कथाकार और उपन्यासकार नवीन जोशी को उनके उपन्यास 'देवभूमि डेवलपर्स' के लिए 15वें अयोध्या प्रसाद खत्री स्मृति-सम्मान से सम्मानित किया गया। 'देवभूमि डेवलपर्स' उपन्यास के केन्द्र में है अलग उत्तराखण्ड राज्य बनने की कहानी और वहाँ का जन आंदोलन। 'देवभूमि' कहा जाने वाला यह भूखण्ड जब अलग राज्य बना तब इस इलाक़े को विकसित करने के लिए कई डेवलपर्स संस्थाएँ खड़ी हो गईं और इन संस्थाओं ने भूमि माफ़ियाओं, शराब कारोबारियों, दलालों, भ्रष्ट अधिकारियों से गठजोड़ करके किस प्रकार उत्तराखण्ड को कथित रूप से बर्बाद कर उसकी नैसर्गिक सुन्दरता को नेस्तनाबूद किया तथा प्राकृतिक स्रोतों को लूट, वहाँ के मूल निवासियों को दर-ब-दर किया, उसी का मार्मिक आख्यान इस उपन्यास में दर्ज है।

नवीन जोशी को प्रशस्ति पत्र देते हुए मनोज कुमार वर्मा
साथ में हैं अवधेश प्रीत, रवीन्द्र कुमार रवि तथा वीरेन नंदा

सम्मान ग्रहण करते हुए नवीन जोशी ने कहा कि इस उपन्यास को आप चाहें जिस तरह पढ़ें- एक उपन्यास मानकर या सामाजिक-सांस्कृतिक संघर्ष का दस्तावेज़ मानकर या विकास के नज़रिया विहीन मॉडल के पीछे की राजनैतिक विद्रूपताओं की कहानी का रिपोर्ताज मानकर– रचना का उद्देश्य अपनी जगह स्थिर है। खड़ी बोली हिन्दी के लिए संघर्ष करने वाले अयोध्या प्रसाद खत्री के नाम पर यह सम्मान मिलना बहुत गर्व की बात है।

मुख्य वक्ता के रूप में पत्रकार-लेखक अवधेश प्रीत ने इस उपन्यास की ख़ूबियों की चर्चा करते हुए कहा कि उत्तराखण्ड के संघर्षों की कथा इस उपन्यास में है। रवीन्द्र कुमार रवि ने अध्यक्षीय वक्तव्य दिया। प्रशस्ति पाठ मनोज वर्मा ने किया। कार्यक्रम का संचालन

वीरेन नंदा और धन्यवाद ज्ञापन कामेश्वर प्रसाद ने किया। इस अवसर पर लेखक, कवि, संस्कृतिकर्मी आदि ढेरों संख्या में मौजूद थे।

प्रस्तुति : कुंदन कुमार, ई-मेल : kunden12867@gmail.com

• ठाकुर प्रसाद सिंह जन्मशताब्दी पर आयोजन

साहित्य अकादेमी द्वारा पिछले दिनों प्रसिद्ध गीतकार एवं लेखक ठाकुर प्रसाद सिंह की जन्मशतवार्षिकी के अवसर पर 'साहित्य मंच' कार्यक्रम आयोजित किया गया। इसमें उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर विस्तार से चर्चा हुई। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रख्यात गीतकार एवं आलोचक राजेन्द्र गौतम ने की और राधेश्याम बंधु, जगदीश व्योम एवं रमा सिंह ने अपने-अपने आलेख प्रस्तुत किए। राजेन्द्र गौतम ने उनके गीतों का लयात्मक अंग्रेज़ी अनुवाद भी प्रस्तुत किया।

जगदीश व्योम ने 'वंशी और माँदल' पर केन्द्रित अपने वक्तव्य में कहा कि उनके गीतों में लोकजीवन की सकारात्मकता को महसूस किया जा सकता है। उन्होंने उनके गीतों में संथाल और मुंडा जनजातियों के परिवेश के प्रभाव को भी रेखांकित किया। राधेश्याम बंधु ने ठाकुर प्रसाद सिंह के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि उनकी कविताओं में आदिवासी जीवन के अभावों के त्रासद सत्य समाहित हैं। उन्होंने अज्ञेय के हवाले से ठाकुर प्रसाद सिंह के गीतों की उत्कृष्टता का उदाहरण भी दिया। रमा सिंह ने अपना वक्तव्य ठाकुर प्रसाद सिंह के काव्य 'महामानव' पर केन्द्रित करते हुए कहा कि 21वर्ष की अवस्था में उनके द्वारा महात्मा गाँधी पर लिखा यह प्रबन्ध-काव्य अपनी सरल और सहज भाषा में गाँधीजी के समूचे जीवन और उनके संघर्षों को प्रस्तुत करता है। अकादेमी के उपसचिव

बाएँ से : अजय कुमार शर्मा, देवेन्द्र कुमार देवेश, जगदीश व्योम, राजेन्द्र गौतम, रमा सिंह, राधेश्याम बंधु

देवेन्द्र कुमार देवेश ने उनके उपन्यासों 'कुब्जा सुन्दरी' एवं 'सात घरों का गाँव' के बारे में संक्षिप्त टिप्पणी की और बताया कि उनके ये उपन्यास आदिवासी समुदायों के जीवन का आख्यान हैं।

प्रस्तुति : अजय कुमार शर्मा, ई-मेल : ajayksharma66@gmail.com

• के. के. बिरला फ़ाउंडेशन का वर्ष 2024 का व्यास सम्मान

वर्ष 2024 के व्यास सम्मान के लिए प्रसिद्ध कथाकार सूर्यबाला के उपन्यास 'कौन देस को वासी : वेणु की डायरी' का चयन किया गया है। सूर्यबालाजी समाज के कुछ मुद्दों को केन्द्र में रखकर किसी कहानी या उपन्यास की रचना करती हैं। सूर्यबाला का यह उपन्यास एक विशिष्ट पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। भारतीय युवा ऐसा समझता है कि अमरीका उसका आश्वस्तिकारक भविष्य है। आर्थिक उपलब्धियों की संभावनाओं में माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्य भी किसी युवक का अमरीका जाना एक सुखद स्वप्न की तरह देखते हैं। आर्थिक पक्ष की दृष्टि से वर्तमान सन्दर्भों में यह बहुत दूर तक ठीक भी है किन्तु अमरीका जाने वाला युवक वहाँ जाने पर किन चुनौतियों का सामना करता है, किन प्रलोभनों का शिकार होता है और सांस्कृतिक सार पर किस वैचारिक संघर्ष से गुज़रता है, इसका अनुमान सहज नहीं लगाया जा सकता। आर्थिक समृद्धि किसी के जीवन में सभी कोनों को समृद्ध कर देती है, ऐसा नहीं माना जा सकता। आनुवंशिक संस्कार सांस्कृतिक निष्ठा और पारम्परिक जीवन शैली में उठे व्यतिक्रम और असंतोष से जीवन में विपर्यस्तता का संकट उपस्थित होता है।

सूर्यबालाजी को अब तक प्रियदर्शिनी पुरस्कार, व्यंग्य श्री पुरस्कार, रत्नादेवी गोयनका वाग्देवी पुरस्कार, हरिशंकर परसाई स्मृति सम्मान, महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादेमी, मुम्बई राज्यस्तरीय सम्मान एवं सर्वोच्च शिखर सम्मान, राष्ट्रीय शरद जोशी प्रतिष्ठा पुरस्कार, भारतीय प्रसार-परिषद का भारती गौरव सम्मान आदि से सम्मानित किया जा चुका है।

प्रस्तुति : के. के. बिरला फ़ाउंडेशन, ईमेल : kkbf2006@gmail.com

प्रकाशन विभाग के विक्रय केंद्र

नई दिल्ली	पुस्तक दीर्घा, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड	110003	011-24367260
पुणे	ग्राउंड फ्लोर, कैरियर बिल्डिंग, महादजी शिंदे बीएसएनएल टी ई कम्पाउंड, पूना क्लब के पास, कैंप, पुणे	411001	–
कोलकाता	8, एसप्लानेड ईस्ट	700069	033-22488030
चेन्नई	'ए विंग, राजाजी भवन, बसंत नगर	600090	044-24917673
तिरुअनंतपुरम	प्रेस रोड, नई गवर्नमेंट प्रेस के निकट	695001	0471-2330650
हैदराबाद	कमरा सं- 204, दूसरा तल, सीजीओ टॉवर, कवादिगुड़ा, सिकंदराबाद	500080	040-27535383
बैंगलुरु	फ़र्स्ट फ्लोर, 'एफ़ विंग, केंद्रीय सदर, कोरामंगला	560034	080-25537244
पटना	बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ	800004	0612-2683407
लखनऊ	हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, क्षेत्र-ए, अलीगंज	226024	0522-2325455
अहमदाबाद	4-सी, नैप्च्युन टॉवर, चौथी मंजिल, एचपी पेट्रोल पंप के निकट, नेहरू ब्रिज कार्नर, आश्रम रोड	380009	079-26588669
गुवाहाटी	असम खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड परिसर, एमआरडी रोड, चानमारी, गुवाहाटी	781003	0361-4083136

योजना
विकास को समर्पित मासिक
(हिंदी, अँग्रेज़ी, उर्दू व 10 अन्य भारतीय भाषाओं में)

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

कुरुक्षेत्र
ग्रामीण विकास पर मासिक
(हिंदी और अँग्रेज़ी)

आजकल
साहित्य एवं संस्कृति का मासिक
(हिंदी तथा उर्दू)

बाल भारती
बच्चों की मासिक पत्रिका
(हिंदी)

घर पर हमारी पत्रिकाएँ मंगाना है काफी आसान...

आपको सिर्फ नीचे दिए गए 'भारत कोश' के लिंक पर जा कर पत्रिका के लिए ऑनलाइन डिजिटल भुगतान करना है-
https://bharatkosh.gov.in/Product/Product

सदस्यता दरें

प्लान	योजना या कुरुक्षेत्र या आजकल		बाल भारती	
वर्ष	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ
1	₹ 230	₹ 434	₹ 160	₹ 364

ऑनलाइन के अलावा आप डाक द्वारा डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर से भी प्लान के अनुसार निर्धारित राशि भेज सकते हैं। डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल ऑडर या मनीआर्डर '**अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय**' के पक्ष में **नई दिल्ली** में देय होना चाहिए।

अपने डीडी, पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर के साथ नीचे दिया गया 'सदस्यता कूपन' या उसकी फोटो कॉपी में सभी विवरण भरकर हमें भेजें। भेजने का पता है-
संपादक, पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कक्ष सं. 779, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003

अधिक जानकारी के लिए ईमेल करें- pdjucir@gmail.com

हमसे संपर्क करें- **फोन : 011-24367453** (सोमवार से शुक्रवार सभी कार्य दिवस पर प्रात: साढ़े नौ बजे से शाम छह बजे तक)

कृपया नोट करें कि सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद सदस्यता शुरू होने में कम से कम आठ सप्ताह लगते हैं। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें और पत्रिका न मिलने की शिकायत इस अवधि के बाद करें।

सदस्यता कूपन (नई सदस्यता/नवीकरण/पते में परिवर्तन)

कृपया मुझे 1 वर्ष के प्लान के तहत ..... पत्रिका ..... भाषा में भेजें।

नाम (साफ व बड़े अक्षरों में) .....

पता : .....

..... ज़िला ..... पिन .....

ईमेल ..... मोबाइल नं. .....

डीडी/पीओ/एमओ सं. ..... दिनांक ..... सदस्यता सं. .....

जेब हर क़मीज़ से हटनी चाहिए...

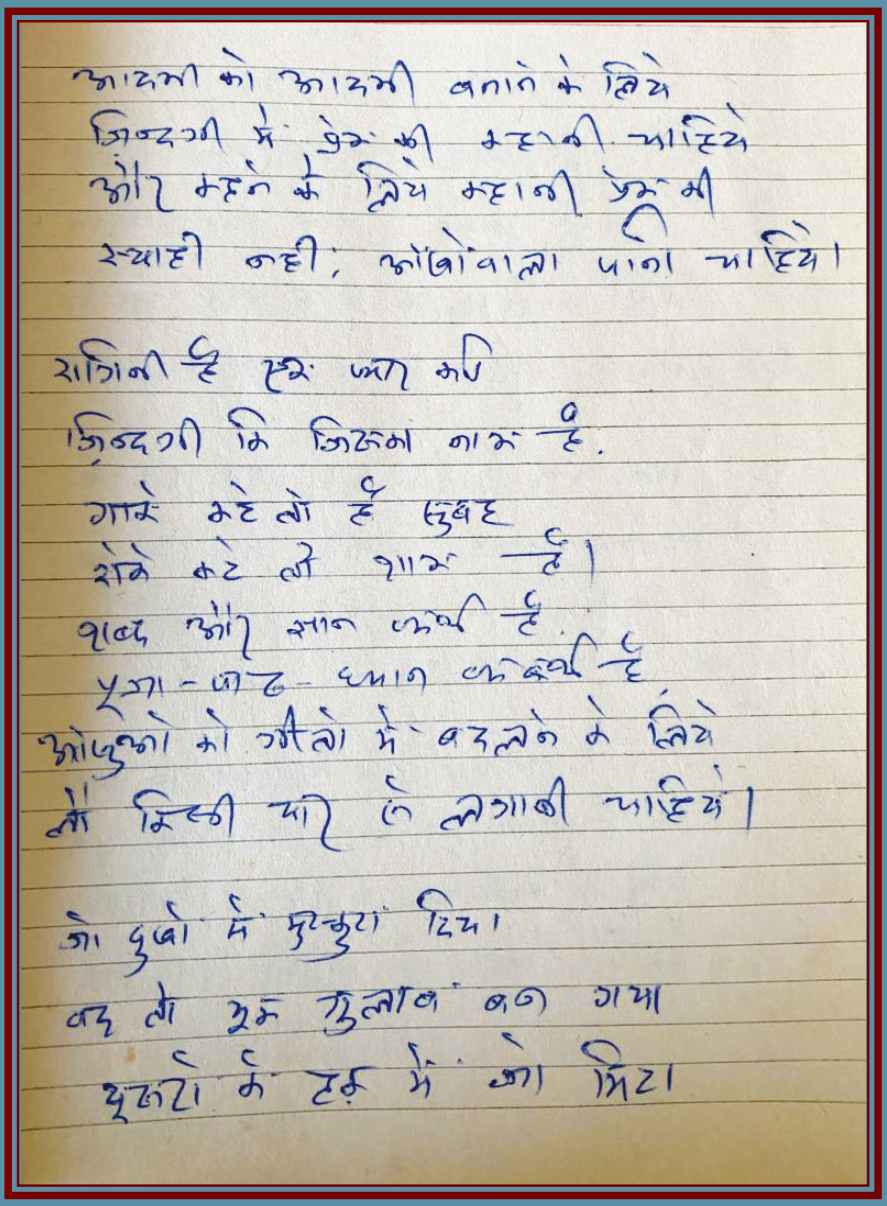
आदमी को आदमी बनाने के लिये
जिन्दगी में प्रेम की महक चाहिये
और महान के लिये महान प्रेम भी
स्याही नहीं; आंखोंवाला पानी चाहिये।

रागिनी है प्रेम जग की कवि
जिन्दगी कि जिसका नाम है.
गाये कटे तो है सुबह
रोके कटे तो शाम है।
शब्द और साज कभी है
पूजा-जाप-ध्यान की बंसी है
आंसुओं को गीतों में बदलने के लिये
तो मिस्री सी ले लगाकी चाहिये।

जो दुखों में फूटकर दिया
वह तो प्रेम गुलाब बन गया
घूंटों के दर्द में जो सिटा

यह तो आफ़ताबसे बढ़ गया।
आगा और अंगना बराबर है
लाटा और थारा बराबर है।
इसे तो मंथनालय में बदलने के लिये
अजनी जैसे जवानी छुट-भलाई आदिसे।

जो आ कुछ लुट रहे हो तुम कहां
वो ही बात तुम्हारे जाक जाएगा
जो धुधके दरखा है लिजो ही मे
यह तो धन व कुछ भी काम आएगा।

सोने जा आ देश कूट जाता है
हा मिली का लेश कूट जाता है।
आखिरी उपाय के अन्वेषण के लिये,
जेल हा मशीन से हटनी चाहिये। ❑

डाक तार पंजीयन सं. डीएल(एस)-05/3222/2024-26
Magazine Post No. DL(DS)-42/MP/2022-23-24
U(DN)-49/2021-23 Licenced to post without pre-payment at RMS Delhi
● 10 दिसम्बर 2024 को प्रकाशित ● 21-22 दिसम्बर 2024 को डाक द्वारा जारी

ISSN: 0971-8478
आरएनआई : 701/57

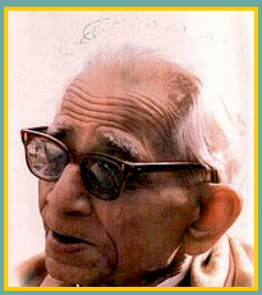

कथाकार - उपन्यासकार

जैनेन्द्र कुमार

(2 जनवरी, 1905 - 24 दिसम्बर, 1988)

(विशेष आलेख भीतर के पृष्ठों में)

प्रकाशक व मुद्रक : शेफ़ाली बी. शरण, प्रधान महानिदेशक, प्रकाशन विभाग द्वारा राज प्रिंटर्स, ए-9 सैक्टर बी-2, ट्रोनिका सिटी, लोनी, ग़ाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से प्रकाशित। सम्पादक : फ़रहत परवीन